नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

# बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 2 अंक 4
मई 2000 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

# वाजपेयी सरकार के मजदूरों के खिलाफ आक्रामक तेवर

## सरकार, विपक्ष और अदालत—सब आज मालिकों के साथ खड़े हैं

## किसी का इंतजार न करो! अपनी एकता मजबूत करो!

केन्द्र की भाजपा गठबंधन सरकार एक के बाद एक मजदूर विरोधी कदमों का कोई भी जोरदार विरोध न होने से उसके हौसले दिन पर दिन बुलन्द होते जा रहे हैं, आक्रामकता दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। और दूसरी तरफ तमाम चुनावबाज पार्टियां और उनसे जुड़ी विशाल यूनियनें निजीकरण-उदारीकरण के खिलाफ जुमलेबाजी के अलावा कुछ नहीं कर रही हैं और मजदूरों की विशाल आबादी को भूखे भेड़ियों के सामने छोड़ दिया गया है।

देशी-विदेशी पूंजीपति लुटेरों की सेवा में बदहवास सरकार की आक्रामकता इतनी बढ़ चुकी है कि मजदूरों और गरीबों को रसातल में धकेलने वाले, उनकी जिन्दगी को दिन-ब-दिन दूभर बना देने वाले कड़े से कड़े कदम उठाते जाने के बाद प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी धमकी भरे अंदाज में मजदूरों से "अपील" करते हैं कि वे आर्थिक सुधारों के प्रति सकारात्मक और सहयोगी रुख अपनायें।

मजदूरों को पूरी तरह मालिकों की मर्जी का गुलाम बना देने वाला नया श्रम कानून कभी भी लागू हो सकता है, सरकारी नीतियों के कारण पिछले कुछ वर्षों में लगभग ढाई करोड़ मजदूर रोजी-रोटी खो चुके हैं, जो किसी तरह का रोजगार पाये हुए हैं वे भी जिन्दा भर रह पाने लायक मजदूरी पर जानवरों की सी जिन्दगी बसर करने पर मजबूर हैं, देश भर में बेकारी से तंग आकर आत्महत्या करने वाले मजदूरों की संख्या बढ़ रही है, और दूसरी तरफ प्रधानमंत्री उल्टे मजदूरों को धमका रहे हैं कि देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए उन्हें ही कड़े कदमों का असर झेलने के लिए तैयार रहना चाहिए। भारतीय श्रम सम्मेलन के छत्तीसवें सत्र का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री ने

**सम्पादकीय डेस्क**

कहा कि उदारीकरण की प्रक्रिया अब थमने वाली नहीं है और मजदूर संगठनों को इसमें अड़चनें डालने के बजाय सहयोगी भूमिका निभानी चाहिए।

हालांकि इसी भाषण में उन्होंने यह भी बताया कि देश भर में सवा दो लाख लघु उद्योग बीमार हैं और बंदी के कगार पर हैं। पर उन्होने यह नहीं कहा कि लघु उद्योगों को इस हाल में पहुंचाने के लिए वे ही नीतियां जिम्मेदार हैं जिन्हें लागू करने के लिए उनकी सरकार देश और जनता के सभी हितों को ताक पर धरे दे रही है।

इससे पहले वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा ने बजट में गरीबों को लाभ पहुंचाने वाली किसी तरह की सब्सिडी में कटौती वापस लेने से साफ इंकार कर दिया। पूरी बेशर्मी के साथ उन्होंने आंकड़ों का जखीरा पेश करते हुए बताया कि गरीबों के काम आने वाली सब्सिडी से ही अर्थव्यवस्था कमजोर हो रही है। ऐसा साबित करने के बाद उन्होने अपने मालिकान को खुश करने के लिए तमाम रियायतों और छूटों की घोषणाएं कर डालीं। वेंचर कैपिटल फण्ड को कर मुक्त कर दिया, दवाओं, जैव प्रौद्योगिकी और निर्यात के क्षेत्र में करों की भारी छूट दी और इसी तरह की कई रियायतें उद्योगों को प्रदान कीं। बजट पेश करते समय ही दूरसंचार और इलेक्ट्रानिक्स उद्योगों को तमाम तरह की सुविधाओं की घोषणा की जा चुकी थी। लेकिन भयंकर अकाल के बावजूद गरीबों को मिलने वाले अनाज और रसोई गैस, डीजल, और पेट्रोल जैसी चीजों के दामों में की गई जबर्दस्त बढ़ोत्तरी को वापस लेने से साफ इंकार कर दिया।

मजदूरों के खिलाफ तो यह सरकार इतनी आक्रामक हो जाती है लेकिन जहां अपने आकाओं की बात आती है वे कुत्तों की तरह दुम हिलाने लगते हैं। अप्रैल के पहले हफ्ते में कुछ विदेशी निवेश संस्थानों के खिलाफ आयकर विभाग ने जब कार्रवाई शुरू की तो इसे पूरी तरह जायज ठहराने और देश में कानून के राज की दुहाई देने के अगले ही दिन उन्होंने इन संस्थानों के दबाव के आगे घुटने टेक दिये और आयकर विभाग की कार्रवाइयां वापस ले ली। बैंकों का निजीकरण करने की धमकियां देने वाली सरकार राष्ट्रीयकृत बैंकों के 58 हजार करोड़ रुपये दबाकर बैठे पूंजीपति घरानों का नाम तक सार्वजनिक करने की हिम्मत नहीं जुटा पायी, जनता का यह पैसा वसूल करना तो दूर की बात है।

सरकार बार-बार इस तरह से मामले को पेश करती है जैसे अर्थव्यवस्था के बुरे हाल के लिए वे मजदूर ही जिम्मेदार हैं जो 12-12, 14-14 घण्टे जानवरों की तरह खटकर किसी तरह जीने भर का सामान जुटा पाते हैं। जब कि असलियत यह है कि देशी-विदेशी पूंजीपतियों को लूट की खुली छूट ने देश के अर्थतंत्र को खोखला कर दिया है। अर्थशास्त्री चेतावनी दे रहे हैं कि यदि यही दिशा रही तो कभी भी जबर्दस्त आर्थिक संकट पैदा हो सकता है। जाहिर है इसका भी खामियाजा आम मेहनतकश गरीब जनता को ही भुगतना पड़ेगा। पिछले कुछ वर्षों में आम जनता के लिए हालात असहनीय होते गये हैं। संगठित क्षेत्र में रोजगार में जैसी गिरावट आयी है उसे भयावह ही कहा जा सकता है। 1977-78 से 1982-83

(पेज 9 पर जारी)

### आनन्द निशिकावा और ए.एस.पी. के मजदूरों ने अपने त्रिवर्षीय वेतन समझौते का मांगपत्र प्रबन्धन को सौंपा

## दिहाड़ी मजदूरों को भी अपने आन्दोलन का साझीदार बनाना एक शानदार शुरुआत है

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर)। तराई क्षेत्र के दो महत्वपूर्ण कारखानों—आनन्द निशिकावा (ए.एल.पी.) रुद्रपुर व ए.एस.पी., गजरौला (ज्योतिबा फुले नगर) में जैसे-जैसे त्रिवर्षीय वेतन समझौते का समय नजदीक आता जा रहा है, प्रबन्धतंत्र की बेरुखी बढ़ती जा रही है। दोनों कारखानों की यूनियनों ने अपना-अपना मांग पत्र प्रबन्धकों को सौंप दिया है। उधर कारखानेदार मजदूरों को भड़काने-धमकाने और जोड़तोड़ की कार्रवाइयों में संलग्न है।

उल्लेखनीय है कि दोनों कारखानों में प्रत्येक तीन वर्ष पर जो वेतन समझौता लागू होता है उसकी अवधि इस वर्ष 31 मई को समाप्त हो रही है। दोनों कारखानों में 1 जून से नया समझौता लागू होना है।

आनन्द निशिकावा कं. इम्पलाइज यूनियन द्वारा दिये गये 23 सूत्रीय मांग पत्र में वेतन वृद्धि, वाहन सुविधा, महंगाई भत्ते व एल.टी.ए. में बढ़ोत्तरी, पारिवारिक चिकित्सा सुविधा, बच्चों की शिक्षा आवास एवं आवागमन आदि भत्तों, विभिन्न अवकाशों में वृद्धि सहित तमाम बुनियादी सहूलियतों की मांग रखी गयी है। मांगपत्र में दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों की दिहाड़ी में वृद्धि और स्थायीकरण की मांग उठा-उठा कर यूनियन ने मजदूर एकजुटता की शानदार मिसाल कायम की है। इसी प्रकार की मांगें ए.एस.पी. कारखाने के श्रमिकों ने भी अपने मांग पत्र के माध्यम से उठायी हैं।

यूं तो, वेतन समझौते या किसी भी प्रकार का हक पाना मजदूरों के लिए आज के दौर में बेहद कठिन है। एक तो देश-दुनिया के पैमाने पर मजदूर विरोधी बयार बह रही है। उदारीकरण-निजीकरण-छंटनी-तालाबंदी का दौर चल रहा है। मजदूर विरोधी घातक श्रम कानून लागू करने की तैयारी चल रही है। दूसरे, तराई क्षेत्र के कारखानेदार मजदूरों को निचोड़ने-दोहन करने के लिए पहले से ही कुख्यात रहे हैं। तीसरे, इन दोनों कारखानों के मालिकान यहां के मजदूरों की एकताबद्ध संघर्षों और अतीत की जीतों को कुचलने के लिए पूरी तरह से कटिबद्ध हैं।

यहीं पर एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान दिलाना

(पेज 12 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

एक बीमाकर्मी साथी की 'बिगुल' में प्रकाशित टिप्पणी पर प्रतिक्रिया और लेखक का उत्तर 3
हमारे आंदोलन के आवश्यक काम —लेनिन 4
*क्रान्तिकारी आन्दोलन की समस्याओं पर जारी बहस के अंतर्गत पी. आर. हरणे का लेख :* बदली हुई विश्व परिस्थिति में क्रान्ति की मंजिल तय करने का प्रश्न 5
चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग चार) 6
मजदूरों के कानूनी अधिकार क्या हैं? 10
देश में बाल मजदूरों की सरकारी संख्या सवा दो करोड़ पहुंची 12

## सूखा

## यह प्राकृतिक आपदा नहीं है, इसे मुनाफे की हवस पर टिकी व्यवस्था ने पैदा किया है

देश के पांच राज्य आज प्यास और भूख से तड़प रहे हैं—राजस्थान, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा और महाराष्ट्र। मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, हिमाचल प्रदेश, असम, पश्चिम बंगाल और जम्मू कश्मीर के भी कुछ जिलों में यही हाल है। राजस्थान, गुजरात आदि राज्यों के सभी शहरों और गावों में नदियां, तालाब, जल-संग्रह के पुराने तरीके, जैसे हौद आदि, सभी सूख चुके हैं। कुछ बूंद पानी के लिए लोगों को मीलों चलना पड़ता है, और कहीं पर यह भी नसीब नहीं है। मवेशी लाखों की संख्या में मर रहे हैं। उनके लिए न तो चारा है और पानी तो सपने जैसी बात है।

पिछले सौ साल भंयकरतम बताए जा रहे इस सूखे पर सबसे बड़ा सवाल यह उठता है कि क्या सचमुच यह एक प्राकृतिक आपदा है? जवाब है—नहीं। वाजपेयी सरकार ने भले ही इस सूखे को राष्ट्रीय आपदा घोषित करने से इंकार कर दिया हो, यह उसकी लापरवाही का ही नतीजा है। इस सरकार से और क्या उम्मीद की जा सकती थी? हर दिन अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में भारत की प्रगति की गौरव गाथा सुनने को मिलती है—भारत के महत्व को अमेरिका ने समझ लिया है, भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ा, और सरकार मुद्रा-स्फीति की पूंछ पकड़ कर लटक गयी है और उसे बढ़ने नहीं दे रही...। लेकिन जैसे-जैसे भारत प्रगति करता जा रहा है वैसे-वैसे इस देश की ज्यादा से ज्यादा आबादी को भूख-प्यास से तड़पना पड़ रहा है। आज छह करोड़ आबादी जल-संकट से भंयकर रूप से पीड़ित है।

मौसम विभाग की प्रारम्भिक चेतावनी अगर सही साबित हुई तो इस वर्ष आशंका है कि लगातार 12 सामान्य मानसून के बाद इस वर्ष बारिश सामान्य से कम होगी। यानी असली सूखा तो अभी आगे पड़ेगा।

पिछले दस सालों से लगातार भू-जल विशेषज्ञ, मौसम वैज्ञानिक और अन्य सम्बन्धित शाखाओं के वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे थे कि सरकार अगर उचित प्रबन्ध नहीं करती तो देश को एक विकराल सूखे का

(पेज 9 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग चिंगारी से लगेगी आग

## आपस की बात

# क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठो! अपनी एकता को मजबूत करो!!

मई दिवस पर, 'बिगुल मजदूर दस्ता' की पहल पर रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) में मजदूर मेला का आयोजन, निश्चित रूप से एक शानदार शुरुआत है। आज के मजदूर विरोधी माहौल में मजदूरों के अपने उत्सव का आयोजन। लेकिन एक बात जो सबसे खटकने वाली थी—क्षेत्र के सबसे प्रमुख, संघर्षशील होण्डा पावर प्रोडक्टस के मजदूरों के एक हिस्से की अत्यन्त सक्रिय और महत्वपूर्ण भागीदारी तो एक अन्य हिस्से द्वारा आयोजन में उदासीनता (या फिर बहिष्कार!)।

रुद्रपुर में मई दिवस मनाने या किसी भी कारखाने या अन्य स्थानों के आन्दोलनों में होण्डा में मजदूरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। क्षेत्र के उद्योगपतियों द्वारा सीधा निशाना होण्डा यूनियन को ही बनाया जाता रहा है, जिसका मुकाबला यहां के मजदूर बहादुरी से करते रहे हैं। जहां सत्ताधारियों द्वारा मजदूर आबादी को टुकड़े-टुकड़े में बांटने की साजिश होती रही है वहीं होण्डा में दैनिक वेतनभोगी हों या नियमित, अपनी मजबूत एकता की मिसाल कायम करते रहे हैं।

लेकिन इस बार ऐसा क्या हुआ? पिछले दिनों के संघर्ष में अपनी शानदार एकता के दम पर श्रीराम होण्डा यूनियन ने आर्थिक तौर पर एक शानदार जीत हासिल की, लेकिन राजनीतिक तौर पर स्थितियां विकट दिखीं। वे कौन से कारण थे कि दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों को कोई भी सहूलियत दिलाना तो दूर की बात थी, तालाबन्दी के बाद उन्हें साथ अन्दर तक नहीं ले जाया गया। 'कैज़ुअल' बनाम 'परमानेण्ट' का विवाद खड़ा हो गया। प्रबन्ध तन्त्र अपनी नीतियों में सफल रहा और इसकी जिम्मेदारी भी उसने यूनियन के मत्थे मढ़ दी। अखबारों में यूनियन की खूब किरकिरी हुई, यूनियन का पक्ष भी स्पष्ट नहीं हुआ। इसके बाद मई दिवस के आयोजन में कुछ ऐसी ही स्थितियां दिखीं। यानी मजदूरों के बीच बंटवारे की स्थिति।

यह सच है कि मजदूर मेले के सफल आयेजन में होण्डा श्रमिकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मजदूर विचारधारा के प्रति सचेत होण्डा के मजदूरों ने आज के विपरीत माहौल में अपने इस त्योहार को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा। लेकिन यहीं के मजदूरों के एक अन्य हिस्से द्वारा इसके विरोध के हद तक जाने की बात गले नहीं उतर रही है।

होण्डा के मेरे एक मजदूर साथी, जो इस दो दिवसीय आयोजन में शामिल नहीं हो सके थे, से मैंने जब कारण पूछा तो न आने की वे सफाई देते रहे। लेकिन अन्त में मुझे वे सच्चाई बतलाये बगैर नहीं रह सके। उन्होंने जो बताया, उससे मैं अवाक रह गया। कहा कि 'कुछ लोगों के रोकने पर मैं आयोजन में नहीं गया था। आज मैं बेहद शर्मिंदा हूं। मेरे विभाग का एक अधिकारी तक आयोजन में गया था और लौटकर उसने कहा कि जो मजदूर होकर इस मजदूर मेले में नहीं गये वे मजदूर के नाम पर कलंक हैं।' उसने और भी कुछ बातें बताईं।

खैर, मैं ये बातें इसलिए लिख रहा हूं ताकि ईमानदार और अपने वर्ग के प्रति सचेत साथी सोचें। मई दिवस जैसे आयोजन किसी व्यक्ति या संस्था विशेष के आयोजन नहीं होते। पहल कोई भी ले सकता है। दूसरे जब आज हालात लगातार मजदूर विरोधी होते जा रहे हैं, मजदूर आबादी को जाति-धर्म-क्षेत्र के नाम पर, प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर के नाम पर, कैजुअल व परमानेन्ट के नाम पर, अलग-अलग विभागों के नाम पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटा जा रहा हो: मजदूर विरोधी घातक श्रम कानून बन रहे हों तो हमें क्या करना चाहिए? क्या छुद्र स्वार्थों या निजी हितों के वशीभूत होने वाले काम हमारी ताकत और बिखेर नहीं देंगे? जाने-अनजाने क्या हम पूंजीपतियों और सत्ताधारियों की कुत्सित नीतियों के शिकार नहीं बन रहे हैं।

हर हाल में हमें अपनी संग्रामी एकता को मजबूत और यूनियनों को धारदार बनाना होगा। इसे तोड़ने की हर कोशिश का मुंहतोड़ जवाब देना होगा! तभी हम अपने संघर्षों को आगे ले जा सकते हैं और जीत हासिल कर सकते हैं।

—रवीन्द्र कुमार
भारतीय जीवन बीमा निगम
पंतनगर (ऊधमसिंहनगर)

## और सरल भाषा में मजदूर-किसानों का मार्गदर्शन करें

आप का 'बिगुल' जरूर मेहनतकशों को साहस प्रदान करता है पर भारत के गांव में रहने वालों को नहीं क्योंकि गांव में अनपढ़ लोग हैं। इसलिए मैं अपने साधारण टोली यानि संघ के तरफ से कहना चाहूंगा कि 'बिगुल' में ब्लैकमेलिंग, जूनियर पार्टनर, थर्ड डिग्री, माडल, सर्पिल जैसे अंग्रेजी आप लिखते हैं जो हम लोग नहीं समझते हैं। आप उसका हिन्दी लिखें और सरल भाषा भोजपुरी अथवा मघही में। अगर 'बिगुल' यह चाहता है कि भारत के गांवों को जगा दे, अधिकार कर्तव्य के लिए अथवा दर्शन के क्षेत्र में तो 'बिगुल' को चाहिए कि जो सी.पी.आई. की तरफ से 1952 में 'ऐतिहासिक द्वंद्ववाद' छापा था उसमें किसानों मजदूरों को व्यवहारिक तौर से समझाया था। किसानों के रोजमर्रे उत्पादन-सम्बन्ध, सम्पत्ति-सम्बन्ध से जोड़कर, करीब सौ से डेढ़ सौ पन्ना था। प्रगति प्रकाशन से छपा था जिसमें सर्वहारा दर्शन बुर्जुआ दर्शन में क्या फर्क है, मिसाल देकर उत्पादन सम्पत्ति से जोड़कर। अगर बिगुल को संगठन बनाना है तो उसे लिखना अनिवार्य है। माना जाय कि द्वंद्ववाद, भौतिकवाद, प्रकृति क्या है इसको देहाती बोलचाल की भाषा में मिसाल के साथ हो। किसान के दैनिक श्रम से जुड़ा हो तब न समझेंगे? जैसे चीन के लू शुन का छोटा-छोटा नाटक सरल भाषा में था वैसा लेख लिखें बिगुल में। या प्रेमचन्द का सवा सेर गेहूं आदि। देखा जा रहा है कि गांव में सूदखोर, महाजन भूस्वामी है। भूमिपति के पास 100 से 200-500 बीघा जमीन है। महाजन अन्न भी सूद पर देते हैं, रुपया भी देते हैं। गांव में इन्हीं का चलता बनता है और गांव का थाना प्रभारी का चलता है। यह दोनों एक ही हैं। किसी को जुर्माना करना गाली देना तो सहज बात है। विरोध तो है फिर हमलोग इसी की जमीन पर कामकाज करते हैं। चार किलो पांच किलो मजदूरी देता है इसलिए असम पंजाब भी जाते हैं। साल में 12-15 हजार कमाकर लाते हैं तो 10 से 5 या 15 बीघा वाले का एक कट्ठा, दो कट्ठा जमीन भी हम खरीद लेते हैं। जो कभी हम लोग जमीन के मालिक नहीं थे, अब जमीन के मालिक धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं। जमीन बेचने वाले का पतन हो रहा है लेकिन बड़े-बड़े भूपति तो जमीन नहीं बेच रहे हैं। अगर कोई 25-30 बीघा वाला जमीन बेचना चाहता है तो उसके पास जाता है तो कहता है एक-दो कट्ठा नहीं लेंगे, दो-पांच बीघा लेंगे और कम दाम में लेंगे।

आप हमको सुझाव दें कि समाजवादी क्रान्ति हो या जनवादी क्रान्ति, भारत के लिए कौन सा सटीक होगा। क्योंकि यह समझना मुश्किल हो रहा है। जैसे बिगुल वोट नहीं लड़ता संसदमार्गी नहीं है, पर गांव में कैसे संगठन बनाता है, गांव में बड़े जमीन वाले हैं, छोटे जमीन वाले भी। सूदखोर महाजन भी, खेत मजदूर भी। इनको क्रान्ति के लिए तैयार कैसे किया जाय क्योंकि कारखाने के मजदूर और गांव के मजदूर में अन्तर है। गांव में हरवाही करके मजदूरी मिलता है और रहा 10 कट्ठा खेत तो 10 कट्ठा का फसल जमीन वाला नहीं लेता है, पूरा मेरा होता है। उसके यहां काम नहीं रहेगा तो हम दूसरे के यहां काम करेंगे। साल में तीन महीना हम उसका काम नहीं करते हैं क्योंकि एक महीना पंजाब का गेहूं काटते और एक महीना रोपनी धान का करते हैं और एक महीना असम में माटी काटते हैं। गांव के कमाई से पेट भरता है और बाहर की कमाई से दो-एक कट्ठा जमीन भी लेते हैं।

तो हमारा भी एक सोच है। वह सोच है आखिर मार्गदर्शन क्या हो? जैसे हम कमेरों को कौन दर्शन दरिद्र बनाया और कौन दर्शन दरिद्रता से मुक्ति दिलाएगा ताकि संसार एक समान जिन्दगी बितावे। न कोई दरिद्र बने न किसी को दरिद्र होने का भय हो। ऐसा व्यवस्था हो।

जो हम लिखे हैं उसको आप शुद्ध करके पढ़ें क्योंकि हमारे साथ में और लोग तो हम से कम पढ़े हैं।

हो सके तो ऐसा कोई पुस्तक हो जिसे आप भेज सकते हैं।

राहुल जी के किताब की सूची जरूर भेजें उससे हम चुनेंगे।

सामन्ती अर्थव्यवस्था जबतक रहेगा तो यूरोप जैसा अपना देश भारत बन जायेगा। लेनिन, माओ अपने-अपने देश में तो कोला-कोली जो टुकड़े-टुकड़े में बंटा था, उसको इकट्ठा करके ही तो साझे का खेती किये और उसका सही ढंग से बंटवारे हुआ ताकि सबको पेट भर अन्न मिले खाने को।

—कपिलदेव जी पटेल
गांव व पोस्ट- बखरी नरकटिया,
पताही, पूर्वी चंपारण, बिहार

'बिगुल' का जनवरी-फरवरी 2000 का अंक का. हरणे से प्राप्त हुआ था। 'बिगुल' नियमित भेजते रहें।

—के.डी.शर्मा
सागर (म.प्र.)

## निस्सन्देह नयी सदी मेहनतकशों की होगी

'बिगुल' जनवरी-फरवरी 2000 अंक मिला। पढ़कर संघर्ष की दुनिया की ताजातरीन जानकारी मिली। सम्पादकीय अग्रलेख में व्यक्त आशावाद हवाई नहीं है, यह ठोस सच्चाइयों की जमीन पर खड़ा है।

निस्सन्देह, नयी सदी मेहनतकशों के संघर्षों और विजयों की सदी होगी, क्योंकि वित्तीय साम्राज्यवाद के अन्तर्विरोध तीव्र होते जा रहे हैं और इसके विरुद्ध संघर्ष भी। भले ही इसकी सूचना बुर्जुआ सूचना महाविस्फोट में कहीं न दिखाई देती हो।

अनादि चरण का लेख भारतीय सर्वहारा क्रान्ति के अन्तरविरोधों को उजागर करता है और हमारे सामने गम्भीर कार्यभार उपस्थित करता है, जिसे हमें पूरा करना ही होगा।

चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा के लिए साथी आलोक रंजन को कोटिशः धन्यवाद! क्रान्तिकारी प्रबोधन के लिए यह जरूरी है कि हम विश्व की क्रान्तिकारी गाथाओं तथा क्लासिक साहित्य से परिचित हों। अन्य लेख भी सूचनाप्रद तथा सराहनीय हैं।

### एक नारा यह भी

जीतेंगे-हारेंगे
हारेंगे-सीखेंगे
सीखेंगे-लड़ेंगे
लड़ेंगे-जीतेंगे
जीतेंगे-भाई जीतेंगे
जीतेंगे-जीतेंगे

**अनिल चमड़िया, नई दिल्ली**

### मार्क्सवाद

जिन्दगी को समझना ही
मार्क्सवाद को समझना है
इसके लिए नहीं गुजरना है
किताबों के लाशघर से
न करना है शव-विच्छेदन
शब्दों का।
गुलामी / दमन / शोषण /
असमानता
खुद ही समझा देती है
आजादी की चाहतें
ये चाहतें ही
बन जाती हैं संघर्ष
संघर्ष बन जाता है
कर्मों का सिद्धान्त
यह सिद्धान्त ही
मार्क्सवाद है!

**घनश्याम, वाराणसी**

## बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों का नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

## बिगुल यहां से प्राप्त करें

• शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ • मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज) मऊनाथभंजन, मऊ • जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर • विजय इन्फार्मेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर • विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर • ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ • जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7.30) • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ • विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ • विजय कुमार, 55/3 ई.डब्लू.एस. आवास-विकास कालोनी, रुद्रपुर, ऊधमसिंह-नगर • रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंह-नगर • रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर • प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू., वाराणसी • राजीव वर्मा, द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी.82, पटेलनगर, मुगलसराय • राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र • सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-91 • ललित सती, एल.आई.सी, फैज रोड शाखा, दिल्ली • डी.के. सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, विकास भवन, कलक्ट्रेट, गाजियाबाद • सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो • गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय • पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना • समकालीन प्रकाशन (प्रा) लि., पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना • विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक, नेपियर टाउन, जबलपुर • नरभिण्डर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा./पो. संतनगर, जिला-सिरसा • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता • शर्मा बुक स्टॉल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया

नेपाल • विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई

# एक बीमाकर्मी साथी की 'बिगुल' में प्रकाशित टिप्पणी पर प्रतिक्रिया और लेखक का उत्तर

## टिप्पणी पर प्रतिक्रिया

कृपया नवम्बर-दिसम्बर '99 के अंक में प्रकाशित साथी ललित सती का "अंततोगत्वा बीमा विधेयक संसद में पारित" लेख का संदर्भ लें। यह कहना गलत है कि बीमा कर्मचारियों को इस खुशफहमी की घुट्टी पिलाई जाती रही कि "जैसे वेतन-बोनस-भत्ते की अनेक लड़ाइयों को जीता गया है वैसे ही यह संघर्ष भी जीत जायेंगे।" साथी सती क्षमा करें, इस प्रकार की गलतबयानी उचित नहीं है। बीमा उद्योग में कार्यरत सबसे बड़ी यूनियन आल इण्डिया इंश्योरेन्स एम्प्लाईज एसोसियेशन ने हमेशा कर्मचारियों को आगाह किया कि "निजीकरण के विरुद्ध लड़ाई कोई साधारण लड़ाई नहीं है, वरन यह हमारे अस्तित्व की लड़ाई है और पिछली लड़ाइयों से सर्वथा भिन्न है।" हालांकि बीमा बिल पास हो गया है, लेकिन बीमा कर्मचारियों ने समाज को झकझोरने वाली लड़ाई लड़ी है और शासक वर्ग के चेहरे से नकाब खींचकर उनको बेनकाब करने में अपनी भूमिका का भी निर्वाह किया है, अन्यथा बीमा क्षेत्र का निजीकरण सबसे आसान काम था। बीमा के निजीकरण के विरुद्ध लड़ाई जितने व्यापक पैमाने पर लड़ी गयी, उस पैमाने पर उदारीकरण के विरुद्ध किसी भी क्षेत्र में नहीं लड़ी गयी। यहां तक कि पूंजीवादी मीडिया भी निजीकरण के विरुद्ध संघर्ष के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हुए भी इसे "आर्थिक सुधार प्रक्रिया का सर्वाधिक विवादग्रस्त मुद्दा" बताने के लिए बाध्य हुआ। ए.आई.आई.ई.ए. ने 1994 में मल्होत्रा कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद नहीं और न ही 1991 में नई आर्थिक नीतियां लागू होने के बाद, बल्कि सन् 1989 में ही, जब सुपर 301 के जरिए तृतीय विश्व के देशों पर अमेरिकी साम्राज्यवाद का शिकंजा कस रहा था, बीमा के निजीकरण के विरुद्ध मुहिम छेड़ दी थी। हालांकि उस वक्त अनेक बुद्धिजीवियों ने ए.आई.आई.ई.ए. की खिल्ली उड़ाई थी कि यह संगठन उन सांपों को देख रहा है जो वास्तव में हैं ही नहीं, लेकिन ए.आई.आई.ई.ए. ने सच देखा था। आज उन बुद्धिजीवियों को सर्प सूंघ गया है। ए.आई.आई.ई.ए. ने अपनी ओर से बीमा कर्मचारियों और बीमा कर्मचारियों के जरिए जनता को प्रशिक्षित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मात्र अखबारों में बयानबाजी कर अपना विरोध नहीं जताया, वरन समाज से जुड़े हर तबके को आंदोलित करने का प्रयास किया। जनता से कट चुके शासक वर्ग की जनविरोधी मुहिम के जवाब में ऐसा ही जनवादी आन्दोलन चलाना सर्वथा उचित था। 1989 के बाद से जनसम्पर्क कभी नहीं टूटा। पूरे देश के पैमाने पर देखा जाये तो हर समय, हर दिन किसी न किसी रूप में ए.आई.आई.ई.ए. बीमा के निजीकरण के विरुद्ध अलख जगा रही थी। हजारों संगोष्ठियां, साइकिल रैलियां, पदयात्राएं, जीप यात्राएं, हस्ताक्षर अभियान, पोस्टकार्ड अभियान, हड़ताल, धरने, मशाल जुलूस, पर्चा वितरण आदि कार्यक्रम बीमा कर्मचारियों ने किसी "नौकरशाही नेतृत्व" के आदेश से नहीं, वरन स्वेच्छा से अपनी खुद की पहल पर आयोजित किये। ए.आई.आई.ई.ए. कोई ब्रेड एण्ड बटर ट्रेड यूनियन नहीं है। वेतन-बोनस-भत्ते हमारी यूनियन की दृष्टि में सर्वाधिक महत्व के कदापि नहीं है। निजीकरण के विरुद्ध लड़ाई बीमाकर्मियों ने राष्ट्रीय सम्प्रभुता पर हमले के प्रति लड़ाई के रूप में लड़ी है। बिल पास होने के बाद भी लड़ाई थमी नहीं है और न ही यह लड़ाई थमेगी। वरन अब यह लड़ाई और विकराल और व्यापक रूप धारण करेगी।

उन ट्रेड यूनियन की आलोचना करना उचित है जो राष्ट्र, समाज, कर्मचारियों के हितों को दरकिनार कर गुप्त समझौते करती हैं, लेकिन जो यूनियनें बेहतर काम कर रही हैं, उनकी आलोचना करना कतई सही नहीं है।

आशा है, आप मेरे विचारों को अपने क्रान्तिकारी पत्र में स्थान देकर मुझे कृतज्ञ करेंगे।

—मनोज कुमार गुप्ता
एल.आई.सी., बिलासपुर
जिला रामपुर

## टिप्पणी लेखक का जवाब

प्रिय साथी,

मुझे अफसोस है कि आपने टिप्पणी में व्यक्त मूल विचार एवं बुनियादी तर्कों को समग्रता में ग्रहण नहीं किया। सबसे पहले तो हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमने यह कहीं नहीं लिखा है कि देश भर में आम बीमा कर्मचारियों ने किसी नौकरशाह नेतृत्व के आदेश पर संघर्षों में हिस्सेदारी की है। बल्कि, हमारा तो यह कहना है कि बीमा यूनियनों के नेतृत्व ने बीमा के निजीकरण के विरोध में संघर्ष का जो भी कार्यक्रम तय किया, आम बीमा कर्मियों ने अपने अस्तित्व का प्रश्न बनाकर उसमें शिरकत की है। हमने निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के खिलाफ संघर्ष की दिशा और उसके राजनीतिक परिप्रेक्ष्य पर प्रश्नचिन्ह खड़ा किया है। हमने बीमा यूनियनों के नेतृत्व की गैरजनवादी नौकरशाहाना कार्यशैली की आलोचना की है। हम इस बात की आलोचना करते रहे हैं कि यूनियनों की (और ए.आई.आई.ई.ए. भी इसका अपवाद नहीं है) रोजमर्रा की कार्रवाइयों में, संघर्षों की रणनीति-कार्यनीति निर्धारित करने की प्रक्रिया में आम बीमा कर्मियों की भागीदारी बढ़ाने, उनकी पहलकदमी को प्रोत्साहित करने का कोई सचेत प्रयास नहीं किया जाता। ऊपर से फरमान जारी कर दिये जाते हैं। कामकाज में पारदर्शिता का अभाव है। यूनियनों के चुनावों और विभिन्न इकाइयों की बैठकों के दौरान दिखायी पड़ने वाला जनवाद महज एक औपचारिकता बनकर रह जाता है, क्योंकि नीतिगत प्रश्नों पर आम सदस्यों की राय का व्यवहारतः कोई महत्व नहीं होता। ऊपरी तौर पर दिखने वाले जनवादी क्रियाकलाप महज ऊपर के फरमानों पर ठप्पा लगाने से अधिक कुछ नहीं होते।

दूसरी बात, आपने 1989 से लेकर अब तक ए.आई.आई.ई.ए. द्वारा उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के खिलाफ चलाये गये अभियानों-संघर्षों का जो विवरण दिया है, उनसे हमारी कोई असहमति नहीं है। वे तथ्य की बातें हैं। इन तथ्यों के बावजूद हम इन सबको रस्मी कवायदें क्यों मानते हैं, इसके लिए हमने अपने तर्कों को पर्याप्त स्पष्टता से प्रस्तुत किया है। हमारा आग्रह है कि आप एक बार पुनः टिप्पणी को पढ़ें। शायद आपको स्वतः स्पष्ट हो जाये। फिर भी हम यहां प्रमुख तर्कों को सूत्रवत रख रहे हैं।

1. हमारा पहला प्रमुख तर्क उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से सम्बन्धित है। टिप्पणी के पांचवें पैरा में हमने इसे पर्याप्त स्पष्टता से रखा है। इसके पूर्व के कई अंकों में प्रकाशित टिप्पणियों में भी हमने यह बात लिखी है कि भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां ढांचागत संकटों से ग्रस्त विश्व पूंजीवाद की एक समग्र नयी रणनीति का अंग है। बीमा क्षेत्र का उदारीकरण साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी की जितनी आवश्यकता है उतनी ही देशी पूंजी की भी। देश के भीतर आज बाजार की खुली अर्थव्यवस्था का दौर पुराने पब्लिक सेक्टर यानी राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद की कोख से ही जन्मा है। इसलिए इसके विरुद्ध संघर्ष नेहरू के 'पब्लिक सेक्टर' को बहाल करने की जमीन पर खड़ा होकर नहीं किया जा सकता। निजी स्वामित्व की बुनियाद पर खड़े अराजक पूंजीवादी उत्पादन तंत्र का विकल्प राजकीय पूंजीवाद का ढांचा नहीं हो सकता, क्योंकि इसके तहत ऊपरी तौर पर दिखायी पड़ने वाला सामूहिक स्वामित्व (राजकीय स्वामित्व) वस्तुतः निजी स्वामित्व का खात्मा नहीं होता। यह विडम्बना है कि पूंजीवादी राजकीय स्वामित्व को समाजवाद का समानार्थी बनाकर प्रस्तुत किया जाता रहा है और मजदूर वर्ग के भीतर विभ्रम पैदा किया जाता रहा है। समाजवाद के लिए निर्णायक प्रश्न सिर्फ यह नहीं होता कि उत्पादन के साधनों पर मालिकाने का ऊपरी रूप क्या है? मालिकाने का सवाल एक बुनियादी प्रश्न है। लेकिन निर्णायक महत्व का प्रश्न यह है कि राज्यसत्ता किस वर्ग के हाथ में है। यदि राज्यसत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथ में हो तो राजकीय स्वामित्व राजकीय इजारेदार पूंजीवाद ही होता है। इसलिए, हमेशा हमारा जोर इस बात पर रहा है कि उदारीकरण-निजीकरण के खिलाफ संघर्ष को एक क्रान्तिकारी राजनीतिक परिप्रेक्ष्य देना होगा। तात्पर्य यह कि बीमा क्षेत्र के साथ-साथ अन्य उद्योगों के मजदूरों द्वारा निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के खिलाफ चलाये जा रहे संघर्षों को एक दूसरे से जोड़ते हुए पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों की दिशा में केन्द्रित करना होगा। आज मजदूर वर्ग की सभी छोटी-बड़ी लड़ाइयों को समूची पूंजीवादी राज्यसत्ता को उखाड़ फेंकने और सामूहिक स्वामित्व की बुनियाद पर एक नया उत्पादन तंत्र, शासन तंत्र और समाजतंत्र कायम करने की दिशा में केन्द्रित करना होगा।

लेकिन, ए.आई.आई.ई.ए. का नेतृत्व और संसदीय वामपंथी दल बीमाकर्मियों के सामने यह राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और संघर्ष की यह दिशा प्रस्तुत करने के बजाय सिर्फ 'पब्लिक सेक्टर' की बहाली का परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इसलिए, इस राजनीतिक जुमलेबाजी से कि "निजीकरण के विरुद्ध लड़ाई कोई साधारण लड़ाई नहीं है, वरन यह हमारे अस्तित्व की लड़ाई है और पिछली लड़ाइयों से सर्वथा भिन्न है", आम बीमा कर्मियों के सामने इससे अधिक कुछ स्पष्ट नहीं होता कि यह लड़ाई पहले की लड़ाइयों से कठिन है। इस लड़ाई का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और दिशा पहले की लड़ाइयों से किस मायने में भिन्न है, जब तक यह नहीं स्पष्ट होता, तब तक आम बीमा कर्मी यही समझते रहेंगे कि यदि पहले से ज्यादा लड़ाकूपन के साथ लड़ा जाये तो "जैसे वेतन-बोनस-भत्ते की अनेक लड़ाइयों को जीता गया है वैसे ही यह संघर्ष भी जीत जायेंगे।"

साथी, क्या आप इससे इंकार करेंगे कि इसी आत्मघाती-आत्मातोष ने आज हमें इस दुर्भाग्यपूर्ण मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया है कि आम बीमाकर्मी एक गहरे पराजयबोध और निराशा की मनःस्थिति में आ खड़े हुए हैं।

2. ए.आई.आई.ई.ए. के संघर्षों को रस्मी कवायद कहने के पीछे हमारा दूसरा प्रमुख तर्क यह है कि आखिर बीमा, बैंक, रेलवे, दूरसंचार, डाक-तार और सार्वजनिक उपक्रमों के उदारीकरण-निजीकरण विरोधी संघर्षों को एकसूत्र में क्यों नहीं पिरोया जा सका? क्यों नहीं एक साझा मोर्चा बनाकर एक दूरगामी संघर्ष की रणनीति बनायी जा सकी? क्यों ऐसा होता रहा कि जब जिस उद्योग पर विपदा आसन्न हुई तभी संघर्ष तेज करने की कवायद की गयी? जबकि अधिकांश उद्यमों में मजदूरों-कर्मचारियों का बड़ा हिस्सा एक ही विचारधारात्मक-सांगठनिक नेतृत्व (यानी संसदीय वामपंथियों के नेतृत्व) के प्रभाव में था। क्या यह असम्भव था कि यदि इस आधार पर भी एक व्यापक एकजुटता कायम करने और संघर्ष की एक सुनियोजित दूरगामी साझा रणनीति बनाने की उचित समय पर पहल हुई होती तो आम मजदूरों के दबाव से अन्य यूनियनों का नेतृत्व भी संघर्षों में शामिल होने के लिए बाध्य हो जाता? हमारा मानना है कि ऐसा सम्भव था क्योंकि आम कर्मचारी-आम मजदूर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने को तैयार थे। सवाल सिर्फ नेतृत्व की ईमानदार पहलकदमी का था। ऐसा क्यों नहीं हो सका? क्या इसके लिए आप भी संसदीय वामपंथियों की तरह मजदूरों की पिछड़ी राजनीतिक चेतना को ही प्रमुख रूप से जिम्मेदार मानते हैं?

साथी, हमारा कामरेडाना आग्रह है कि आप इन सवालों पर पुनः सोचें और इसके आलोक में 'बिगुल' में प्रकाशित टिप्पणियों को एक बार पुनः पढ़ें।

—ललित सती
एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, दिल्ली

# ओसराम इण्डिया लिमिटेड के मजदूर संघर्ष की राह पर

(बिगुल प्रतिनिधि)

कई तरह के बल्ब और लैम्प बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी ओसराम इण्डिया लिमिटेड के सोनीपत (हरियाणा) स्थित कारखाने के मजदूर इन दिनों संघर्ष की राह पर हैं। पिछले लगभग दो वर्ष से फैक्ट्री गेट पर धरना चल रहा है। प्रबन्धन ने 25 मजदूरों को निलम्बित कर रखा है।

संघर्ष की शुरुआत अप्रैल 1998 में उस समय हुई जब ई.सी.ई. कर्मचारी यूनियन तथा प्रबन्धकों के बीच नये त्रिवर्षीय वेतन समझौते का मांगपत्र यूनियन द्वारा दिया गया। मैनेजमेंट ने इसमें अड़ंगा लगाना शुरू किया और एक फर्जी यूनियन गठित कर उसके साथ मनमानी शर्तों पर समझौता करके उसे ही मजदूरों पर थोपना चाहा। मजदूरों के विरोध करने पर मैनेजमेण्ट ने साफ कह दिया कि जो इसे नहीं मानेगा उसे वेतन नहीं दिया जायेगा। सोनीपत के अधिकारियों के साथ मिलकर मैनेजमेण्ट ने मजदूरों को नौकरी से निकाल देने की धमकी देकर समझौता मानने के लिए जबरन हस्ताक्षर भी करवाये। इसके बावजूद जब मजदूरों ने फर्जी समझौते का विरोध जारी रखा तो मैनेजमेण्ट ने झूठे आरोप लगाकर 25 लोगों को निलम्बित कर दिया।

इसके बाद भी मजदूरों का संघर्ष जारी रहा। मैनेजमेण्ट ने यूनियन के कार्यालय वाले खोखे में आग लगवाने से लेकर धरना स्थल पर गुण्डों से हमला करवाने तक के घृणित हथकण्डे अपनाये जिसमें सात लोगों को गम्भीर चोटें आईं। कुछ मजदूरों को शहर में भी रोक कर पिटवाया गया और धरनास्थल पर बैठी महिला मजदूर साथियों को घिनौनी धमकियां भी दी गईं।

इसी बीच मैनेजमेंट ने बहुराष्ट्रीय कम्पनी ओसराम इण्डिया लिमिटेड को फैक्ट्री बेच दी। मजदूरों को नये प्रबन्धकों से काफी उम्मीद थी लेकिन वे भी उसी राह पर चल रहे हैं। वे भी उसी तरीके से मजदूरों को झूठे आरोपों में फंसाने या गबन के इल्जाम में बर्खास्त कराने की साजिश करने तथा पुलिस और प्रशासन को खरीद कर मजदूरों के आन्दोलन को कुचलने की हर कोशिश में लगे हुए हैं। पिछले दिनों सोनीपत के प्रगतिशील नौजवानों के एक संगठन के कार्यकर्ता जब मजदूरों के समर्थन में ज्ञापन देने गये तो उनके साथ भी मैनेजमेंट के लोगों ने बदसलूकी की और पुलिस बुलाने की भी धमकी दे डाली।

पिछले दो वर्षों से लगातार संघर्ष करने के बावजूद मजदूरों में निराशा नहीं है और वे आज भी रोज काम पर जाने के पहले फैक्ट्री गेट पर नारेबाजी और प्रदर्शन करते हैं। लगभग 80 मजदूरों ने फर्जी समझौते के आधार पर वेतन लेने से इन्कार कर दिया है। लेबर कोर्ट में मुकदमा चल रहा है पर वहां भी मालिकों की साजिश से लगातार देर होती जा रही है।

आज की सच्चाई यह है कि अकेले ओसराम के मजदूर इस लड़ाई को नहीं जीत सकते। सोनीपत में ही स्थित कई दूसरे कारखानों के मजदूरों के साथ उन्हें एकजुटता कायम करनी होगी क्योंकि सभी जगह मजदूरों का उसी प्रकार शोषण और उत्पीड़न होता है। मजदूरों को कुचलने के लिए तो सारे मालिक, पुलिस और प्रशासन के अफसर सब एकजुट हो जाते हैं। लेकिन मजदूर आपस में सच्चे भाई-भाई होने के बावजूद अपने हक के लिए भी एक नहीं हो पाते। यहां तक कि एक ही कारखाने के भीतर भी मजदूरों के भीतर तरह-तरह के बंटवारे होते हैं जिसको बढ़ाने की मैनेजमेण्ट पूरी कोशिश करता है और इसका भरपूर फायदा उठाता है।

यह भी साफ हो चुका है कि नई आर्थिक नीतियों के दौर में लेबर कोर्ट भी पूरी तरह से मालिकों के ही हक में हो गया है। वहां से न्याय मिलना एक सपना ही है और ज्यादातर तो मामले को इतना लम्बा खींच दिया जाता है कि मजदूर खुद ही थक कर हार मान लें। केन्द्र और राज्य की सरकारें पूरी तरह मजदूर विरोधी हैं। भाजपा के नेतृत्व वाली केन्द्र की सरकार ने खुलेआम मजदूर विरोधी नीतियां लागू करने में सबको पीछे छोड़ दिया है। प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी तो लगातार मजदूरों को धमकाने वाले अंदाज में कह रहे हैं कि उन्हें "सुधरना होगा" और कड़े कदम लागू करने में सरकार का साथ देना होगा। चौतरफा माहौल मजदूर विरोधी है। सभी बड़ी यूनियनें चुनावबाज पार्टियों से जुड़ी हुई हैं जो नई आर्थिक नीतियों का समर्थन कर चुकी हैं। इन यूनियनों के राष्ट्रीय नेतृत्व में बैठे लोग जबानी जमाखर्च के अलावा मजदूरों के लिए वास्तविक संघर्ष करने की ताकत खो चुके हैं।

ओसराम के मजदूरों को इस बात को समझना होगा कि केवल कानूनी लड़ाई के द्वारा और केवल अपने कारखाने के भीतर वे जीत नहीं पायेंगे। अगर कोई सफलता मिल भी गई तो कल फिर मैनेजमेंट के नये हमले का सामना करना पड़ सकता है। उन्हें अपने साथी मजदूरों के साथ एकजुटता बनानी होगी और सोनीपत तथा हरियाणा के अन्य प्रगतिशील संगठनों, छात्रों-युवाओं तथा शोषित-उत्पीड़ित वर्गों को अपने साथ जोड़ना होगा तथा एक लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी।

# हमारे आंदोलन के आवश्यक काम

**लेनिन**

रूस के सामाजिक-जनवादियों ने बारम्बार कहा है कि रूस के मजदूर वर्ग की पार्टी का फौरी राजनीतिक काम निरंकुश शासन का अन्त करना, राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करना है। रूसी सामाजिक-जनवाद के प्रतिनिधियों, मजदूर उद्धारक दल के सदस्यों ने इस बात को पन्द्रह वर्ष से भी पहले कहा था। ढाई वर्ष पहले इसी बात की पुष्टि रूस के सामाजिक-जनवादी संगठनों के उन प्रतिनिधियों ने की थी जिन्होंने 1898 की वसंत ऋतु में रूसी सामाजिक- जनवादी पार्टी की स्थापना की थी।

परन्तु, बारम्बार की गयी इन घोषणाओं के बावजूद, रूस में सामाजिक -जनवाद के राजनीतिक कामों का प्रश्न आज फिर प्रमुख हो उठा है। हमारे आंदोलन के अनेक प्रतिनिधि इस प्रश्न के ऊपर बताये गये समाधान के सही होने के विषय में संदेह व्यक्त करते हैं। कहा जाता है कि आर्थिक संघर्ष ही मुख्य महत्व की चीज है; सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक कामों को पीछे धकेल दिया जाता है, संकुचित बना दिया जाता है और सीमित कर दिया जाता है। कहा तो यहां तक जाता है कि रूस में मजदूर वर्ग की स्वतंत्र पार्टी बनाने की बात करना मात्र किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कहे गये शब्दों को दोहराना है, कि मजदूरों को केवल आर्थिक संघर्ष तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए और राजनीति को बुद्धिजीवी वर्ग और उसके सहयोगी उदारपंथियों के जिम्मे छोड़ देना चाहिए।

नये मत (कुप्रसिद्ध क्रीडो[1]) की जो नवीनतम घोषणा की गयी है उसका अर्थ सीधे-सीधे यह कहना है कि रूस का सर्वहारा वर्ग अभी तक वयस्क नहीं हुआ। उसका अर्थ सामाजिक-जनवादी (पार्टी के) कार्यक्रम को पूर्णतः अस्वीकार कर देना होता है।

राबोचाया मिस्ल[2] ने भी (खास तौर से अपने अलहदा परिशिष्ट अंक में) लगभग इसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है।

रूसी सामाजिक-जनवाद दुविधा और संदेह के दौर से गुजर रहा है जिससे प्रतीत होता है कि वह स्वयं अपने को समाप्त कर रहा है। एक ओर तो मजदूर आन्दोलन को समाजवाद से अलग किया जा रहा है; आर्थिक संघर्ष चलाने में तो मजदूरों की मदद की जाती है, किन्तु पूरे आंदोलन के समाजवादी लक्ष्यों और राजनीतिक कार्यों के विषय में उसे समझाने-बतलाने के लिए कुछ भी नहीं, अथवा लगभग कुछ भी नहीं, किया जा रहा है। दूसरी ओर, समाजवाद को मजदूर आन्दोलन से अलग किया जा रहा है; (और) रूसी समाजवादियों ने फिर अधिकाधिक मात्रा में यह कहना शुरू कर दिया है कि सरकार के विरुद्ध संघर्ष को बुद्धिजीवी वर्ग को ही पूरे तौर से चलाना होगा, क्योंकि मजदूर अपने को आर्थिक संघर्षों तक ही सीमित रख रहे हैं।

हमारी समझ में इस दुखद स्थिति के लिए तीन बातों ने जमीन तैयार दी है। पहली बात यह है कि, अपने प्रारम्भिक काम के दिनों में, रूस के सामाजिक-जनवादी अपने को केवल प्रचार केन्द्रों में काम करने तक ही सीमित रखते थे। और जब हमने जन समुदायों के बीच आन्दोलन-कार्य शुरू किया तो एकदम दूसरी सीमा तक चले जाने से अपने को रोकने में हमेशा हम समर्थ नहीं होते थे। दूसरे, अपने प्रारम्भिक काम के दिनों में नरोदनाया वोल्या[3] के अनुयायियों के मुकाबले में हमें बहुधा जीवित रहने के अपने अधिकार के लिए भी लड़ना पड़ता था। नरोदनाया वोल्या के ये अनुयायी "राजनीति" को एक ऐसी गतिविधि समझते थे जिसका मजदूर आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं था और राजनीति को वे मात्र षड्यंत्रकारी संघर्ष मानते थे। इस प्रकार की राजनीति को अस्वीकार करने की क्रिया में, सामाजिक-जनवादी राजनीति को पूरे तौर से पीछे धकेल देने की दूसरी हद तक चले गये। तीसरे, छोटे-छोटे स्थानीय मजदूर केन्द्रों के अन्दर अलग-थलग काम करते हुए सामाजिक- जनवादियों ने एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी का निर्माण करने की आवश्यकता की ओर काफी ध्यान नहीं दिया था जो स्थानीय दलों की तमाम गतिविधियों को जोड़ती और क्रान्तिकारी कार्य को सही ढंग से संगठित करने में मदद देती। अलग-थलग ढंग से काम करने की प्रधानता होने की वजह से स्वाभाविक तौर से आर्थिक संघर्ष की भी प्रधानता हो जाती है।

इन चीजों का परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन के केवल एक ही पक्ष पर सारा जोर लग गया है। "अर्थवादी" प्रवृत्ति ने (अगर उसे हम एक "प्रवृत्ति" की संज्ञा दे भी सकें) इस संकुचितवाद को ऊपर उठाकर एक विशेष सिद्धान्त के स्तर पर स्थापित करने की कोशिश की है और इस उद्देश्य के लिए फैशनेबुल बर्नस्टीनवाद[4] और "मार्क्सवाद की" उस फैशनेबुल "आलोचना" का इस्तेमाल करने की चेष्टा की है जो पुराने पूंजीवादी विचारों पर एक नया लेबुल लगा कर उनका प्रचार करती है। इन कोशिशों ने ही इस बात का खतरा पैदा कर दिया है कि रूस के मजदूर आन्दोलन और रूसी सामाजिक-जनवाद, अर्थात राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष के नेतृत्वकारी दस्ते के बीच का सम्बन्ध कमजोर हो जाये। हमारे आन्दोलन का सबसे जरूरी काम इस सम्बन्ध को मजबूत करना ही होना चाहिए।

सामाजिक-जनवाद, मजदूर आन्दोलन और समाजवाद का मेल है। उसका काम मजदूर आन्दोलन की हर अलग-अलग अवस्था में निष्क्रिय रूप से उसकी सेवा करना नहीं, बल्कि पूरे आन्दोलन के हितों का प्रतिनिधित्व करना, इस आन्दोलन को उसका अन्तिम लक्ष्य तथा उसके राजनीतिक कार्यभार बतलाना, तथा उसकी राजनीतिक और विचारधारात्मक स्वतंत्रता की सुरक्षा करना है। सामाजिक-जनवाद से कट कर मजदूर आन्दोलन नगण्य और अनिवार्य रूप से पूंजीवादी बन जाता है। केवल आर्थिक संघर्ष करने से मजदूर वर्ग अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता खो देता है। वह दूसरी पार्टियों का पुछल्ला बन जाता है और इस महान सिद्धान्त को तिलांजलि दे देता है कि "मेहनतकश वर्गों की मुक्ति को स्वयं मेहनतकश वर्गों द्वारा जीत कर हासिल किया जाना चाहिए।" हर देश में ऐसा एक दौर रहा है जिसमें मजदूर आन्दोलन समाजवाद से विलग था और वे दोनों अपने अलग-अलग रास्तों पर चलते थे; और इस अलगाव की वजह से हर देश में समाजवाद और मजदूर आन्दोलन दोनों को धक्का पहुंचा है। मजदूर आन्दोलन के साथ समाजवाद के मेल से ही तमाम देशों में दोनों का टिकाऊ आधार कायम हो सका है। परन्तु, प्रत्येक देश में समाजवाद और मजदूर आन्दोलन के इस मेल की प्रक्रिया ऐतिहासिक रूप से अलग-अलग तरीकों से, काल और देश की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुई है। रूस में समाजवाद और मजदूर आन्दोलन के बीच मेल कायम करने की आवश्यकता की घोषणा सैद्धान्तिक रूप से बहुत पहले कर दी गयी थी, किन्तु अमली रूप इसे केवल अब ही दिया जा रहा है। यह एक अत्यन्त कठिन प्रक्रिया होती है और इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि इसके साथ तरह-तरह की दुविधाएं और संदेह भी जुड़े रहते हैं।

पिछले जमाने से कौन-सा सबक सीखा जा सकता है?

रूसी समाजवाद के पूरे इतिहास ने जो परिस्थिति पैदा कर दी है उसमें सबसे जरूरी काम (जार की) निरंकुश सरकार के खिलाफ और राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना है। हमारे समाजवादी आन्दोलन ने एक तरह से निरंकुश शासन के विरुद्ध संघर्ष करने के काम पर ही सर्वाधिक जोर दिया है। दूसरी तरफ, इतिहास ने स्पष्ट कर दिया है कि समाजवादी चिन्तन का मेहनतकश वर्गों के हिरावल दस्ते से अलगाव रूस में दूसरे तमाम देशों से अधिक है, और यदि यही स्थिति बनी रहती है तो रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन भविष्य में कुछ भी नहीं कर पायेगा। इसी परिस्थिति से वह काम निकलता है जिसे रूस के सामाजिक-जनवाद को पूरा करना है—उसे सर्वहारा वर्ग के आम जनसमुदायों में समाजवाद के विचारों को फैलाना है और उनके अन्दर राजनीतिक चेतना पैदा करनी है, और उसे एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी संगठित करनी है जो स्वतःस्फूर्त मजदूर आन्दोलन के साथ अटूट रूप से जुड़ी हो। रूस के सामाजिक जनवाद ने इस दिशा में बहुत कुछ किया है, किन्तु अभी और भी अधिक काम करना बाकी है। आन्दोलन की वृद्धि के साथ-साथ, सामाजिक-जनवादियों की गतिविधियों का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है; काम अधिकाधिक विभिन्नता अख्तियार करता जाता है, और आन्दोलन में लगे सक्रिय कार्यकर्ताओं की अधिकाधिक संख्या उन विभिन्न विशेष कामों को पूरा करने के कामों में जुटती जाती है जिन्हें प्रचार और आन्दोलन की दैनिक आवशकताएं प्रस्तुत करती हैं। यह प्रक्रिया सर्वथा स्वाभाविक और अनिवार्य है, किन्तु इसकी वजह से इस चीज के बारे में हमें विशेष रूप से सतर्क रहना पड़ता है कि ये विशेष गतिविधियां तथा संघर्ष के तरीके स्वयं ही लक्ष्य न बन जायें और तैयारी का जो मुख्य और एकमात्र काम है उसके मार्ग में बाधा डालने लगें।

हमारा मुख्य और मूल काम मजदूर वर्ग के राजनीतिक विकास और राजनीतिक संगठन के कार्य में सहायता पहुंचाना है। इस काम को जो लोग पीछे धकेल देते हैं, जो तमाम विशेष कामों और संघर्ष के विशिष्ट तरीकों को इस मुख्य काम के अधीन बनाने से इंकार करते हैं, वे गलत रास्ते पर चल रहे हैं और आन्दोलन को भारी नुकसान पहुंचा रहे हैं। और इस काम को सबसे पहले उन लोगों द्वारा पीछे धकेला जा रहा है जो क्रान्तिकारियों से कहते हैं कि सरकार के विरुद्ध लड़ाई में वे केवल उन षड्यंत्रकारी मण्डलियों की शक्तियों का ही इस्तेमाल करें जो मजदूर आन्दोलन से कटी हुई, अलग-थलग पड़ी हैं। दूसरे, उसे पीछे धकेल रहे हैं वे लोग जो राजनीतिक प्रचार, आन्दोलन और संगठन के सारतत्व तथा उनकी परिधि को सीमित कर देना चाहते हैं; जो मजदूरों को "राजनीति" का स्वाद उनकी जिन्दगियों के केवल असाधारण क्षणों में, केवल विशेष उत्सवों के मौकों पर ही चखाना ठीक और सही समझते हैं; जो निरंकुश शासन के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष करने के स्थान पर अत्यन्त अनुनय-विनय पूर्वक आंशिक सुविधाओं की मांगों को पेश करते हैं; और जो इस बात की पर्याप्त रूप से कोशिश नहीं करते कि आंशिक सुविधाओं से सम्बन्धित इन मांगों को उठा कर एक ऐसे स्तर पर ले जाया जाये जिस पर उनके लिए किया जाने वाला संघर्ष निरंकुशशाही के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की पार्टी के एक व्यवस्थित, अदम्य संघर्ष का स्वरूप ग्रहण कर ले।

सरगम के सारे स्वरों में राबोचाया मिस्ल निरन्तर दोहराता रहता है, "संगठित हो!", और "अर्थवादी" प्रवृत्ति के सारे अनुयायी इसी आवाज को प्रतिध्वनित करते हैं। निस्संदेह, इस अपील का हम भी पूरे तौर से समर्थन करते हैं, किन्तु हम यह जोड़ना भी नहीं भूलते कि : संगठित हो—किन्तु केवल पारस्परिक लाभ की सोसायटियों में, हड़ताली कोषों के लिए, तथा मजदूरों की मण्डलियों में ही नहीं; बल्कि एक राजनीतिक पार्टी में भी संगठित हो; निरंकुश सरकार तथा सम्पूर्ण पूंजीवादी समाज के विरुद्ध संकल्पपूर्ण ढंग से संघर्ष करने के लिए भी संगठित हो। इस प्रकार के संगठन के बिना सर्वहारा वर्ग सचेत वर्ग संघर्ष के स्तर तक कभी ऊपर नहीं उठ सकेगा; इस प्रकार के संगठन के बिना मजदूर आन्दोलन बिल्कुल निर्जीव हो जायेगा। केवल कोषों और अध्ययन मण्डलियां तथा पारस्परिक लाभ की सोसायटियों को लेकर मजदूर वर्ग अपने महान ऐतिहासिक लक्ष्य को—राजनीतिक और आर्थिक दासता से स्वयं अपने को तथा सम्पूर्ण रूसी जनता को मुक्ति दिलाने के लक्ष्य को कभी पूरा न कर सकेगा। अपने राजनीतिक नेता, अपने ऐसे प्रमुख प्रतिनिधि पैदा किये बिना किसी भी वर्ग ने इतिहास में सत्ता नहीं प्राप्त की है जो आन्दोलन को संगठित और उसका नेतृत्व कर सकते हैं। और, रूसी मजदूर वर्ग ने दिखला दिया है कि इस प्रकार के पुरुष और स्त्री वह पैदा कर सकता है। पिछले पांच-छः साल में इतने व्यापक रूप से जो संघर्ष फैला है, उसने मजदूर वर्ग की छिपी हुई महान क्रान्तिकारी शक्ति को उजागर कर दिया है; उसने दिखला दिया है कि सरकार का कठोरतम दमन भी उन मजदूरों की संख्या को कम नहीं कर पाता जो समाजवाद के लिए, राजनीतिक चेतना और राजनीतिक संघर्ष का विस्तार करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसके विपरीत, इस दमन से उनकी संख्या में वृद्धि ही होती है।

1898 में हमारे साथियों ने जो कांग्रेस की थी उसने हमारे कामों को सही तौर से तय कर दिया था। उसने केवल दूसरे लोगों के शब्दों को नहीं दोहराया था, न केवल "बुद्धिजीवियों" के उत्साह को ही व्यक्त किया था।

पार्टी के कार्यक्रम, संगठन और कार्यनीति के प्रश्नों को तात्कालिक प्रश्नों के रूप में सामने रख कर हमें उन्हें पूरा करने के प्रयास में दृढ़तापूर्वक जुट जाना चाहिए। अपने कार्यक्रम के मूलभूत सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अपने विचारों को हम पहले ही व्यक्त कर चुके हैं, और ब्योरे से उनका बखान करने की यह जगह भी नहीं है। अगले अंकों में एक लेखमाला लिख कर हम संगठन के प्रश्नों को लेना चाहते हैं, जो आज सबसे महत्वपूर्ण समस्या बन कर हमारे सामने खड़े हैं। इस सम्बन्ध में रूस के क्रान्तिकारी आंदोलन के पुराने कार्यकर्ताओं की अपेक्षा हम काफी पीछे हैं। इस कमजोरी को हमें खुले दिल से स्वीकार करना चाहिए और फिर अपने काम को और अधिक गुप्त ढंग से चलाने के उपाय निकालने के लिए, काम के सही तौर-तरीकों का व्यवस्थित रूप से प्रचार करने के लिए, सशस्त्र सैनिकों को धोखा देने और पुलिस के जाल से बचने के सही तरीके बतलाने के लिए तन-मन से हमें कोशिश करनी चाहिए। प्रशिक्षित करके ऐसे लोग हमें तैयार करने चाहिए जो क्रान्ति के लिए केवल अपनी खाली संध्याओं को ही नहीं, बल्कि अपना सारा जीवन ही खपा देंगे। हमें एक ऐसा संगठन बनाना चाहिए जो इतना बड़ा हो कि उसके अन्दर हमारे काम के विभिन्न स्वरूपों के अनुसार काम का सख्ती से विभाजन किया जा सके।

अन्त में, कार्यनीति के प्रश्नों के सम्बन्ध में हमें अभी केवल निम्न बातों को ही ध्यान में रखना चाहिए : सामाजिक-जनवाद अपने हाथों को नहीं बांधता, अपनी गतिविधियों को किसी पहले से सांच ली गयी योजना, अथवा राजनीतिक संघर्ष के तरीके तक ही नहीं वह सीमित करता; संघर्ष के सभी तरीकों को वह स्वीकार करता है—बशर्ते कि वे उन शक्तियों के अनुरूप हों जो पार्टी को सुलभ हैं और जो तत्कालीन परिस्थितियों में श्रेष्ठतम फल प्राप्त करने में सहायक होती हैं।

यदि हमारे पास एक मजबूत रूप से संगठित पार्टी हो तो मात्र एक हड़ताल भी एक राजनीतिक प्रदर्शन का, सरकार के ऊपर एक राजनीतिक जीत का रूप ग्रहण कर ले सकती है। यदि हमारे पास एक मजबूत रूप से संगठित पार्टी हो तो किसी एक जगह का विद्रोह भी बढ़ कर एक विजयी क्रान्ति का रूप ग्रहण कर ले सकता है।

हमें याद रखना चाहिए कि आंशिक मांगों के लिए सरकार के खिलाफ किये जाने वाले संघर्ष, तथा किन्हीं सुविधाओं की प्राप्ति—दुश्मन के साथ मात्र हल्की-फुल्की मुठभेड़ों का ही महत्व रखती है। उनका महत्व सैन्य-दलों के बीच हुई केवल टक्करों जैसा ही होता है; निर्णायक लड़ाई अभी बाकी ही है। दुश्मन का दुर्ग अपनी सारी शक्ति के साथ हमारे सामने खड़ा हुआ हमारे ऊपर गोला-बारूद बरसा रहा है; हमारे श्रेष्ठतम योद्धाओं को वह काटे डाल रहा है। जरूरी है कि इस दुर्ग पर हम कब्जा कर लें; और यदि जागते हुए सर्वहारा वर्ग की तमाम शक्तियों को रूसी क्रान्तिकारियों की तमाम शक्तियों के साथ मिलाकर हम एक ऐसी पार्टी में संगठित कर लेते हैं जो उस हर चीज को अपनी ओर आकर्षित कर लेगी जो रूस में जीवनप्रद और ईमानदार है, तो निश्चय ही इस दुर्ग पर हम कब्जा कर लेंगे। और तभी रूसी मजूदर क्रान्तिकारी प्योत्र एलेक्सीएव की यह महान भविष्यवाणी पूरी होगी : "मेहनतकश करोड़ों लोगों की मांसल भुजा उठेगी, और सैनिकों की संगीनों के पहरे में सुरक्षित निरंकुश शासन का जुआ टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

**सम्पूर्ण ग्रंथावली,**
**खण्ड 4, पृष्ट 366-71**
**'इस्क्रा' के अंक 1 में दिसम्बर**
**1900 में प्रकाशित हुआ**

**टिप्पणियां**

1. क्रीडो : 1899 में इस शीर्षक से प्रकाशित दस्तावेज में अर्थवाद की मुख्य प्रस्थापनाओं को प्रस्तुत किया गया था। अर्थवादी कहते थे कि जारशाही के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष का काम मुख्यतया उदारपंथी पुंजुआ लोगों के जिम्मे छोड़ देना चाहिए और मजदूरों को अपने काम की बेहतर स्थितियों, मजदूरी बढ़ाने आदि के लिए आर्थिक संघर्ष तक सीमित रहना चाहिए। वे मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी बनाने और मजदूर आन्दोलन के लिए क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के महत्व से भी इंकार करते थे।

2. राबोचाया मिस्ल (मजदूरों का चिन्तन) : यह अर्थवादियों का अखबार था जो अक्तूबर 1897 से दिसम्बर 1902 तक प्रकाशित हुआ था।

3. नरोदनाया वोल्या (जनता की इच्छा) एक गुप्त क्रान्तिकारी संगठन जिसकी 1879 में स्थापना हुई थी। जारशाही के विरुद्ध संघर्ष में उसके सदस्य व्यक्तिगत आतंक के तरीकों का इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि क्रान्तिकारी जनान्दोलन के बिना भी क्रान्तिकारियों का एक छोटा सा दल सत्ता पर कब्जा कर सकता है और निरंकुशशाही का अन्त कर सकता है।

4. बर्नस्टीनवाद : यह जर्मन तथा अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन के अन्दर पैदा हुई अवसरवादी प्रवृत्ति थी जिसके नेता एडवर्ड बर्नस्टीन थे। वे समाजवादी क्रान्ति तथा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों को ही संशोधित और खारिज करना चाहते थे।

### भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस

**भारत में क्रान्तिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याओं पर साथी पी. आर. हरणे के पत्र से जिस बहस की शुरुआत हुई थी, उसे आगे बढ़ाते हुए हम साथी अनादि चरण के लेख की तीन किश्तें छाप चुके हैं। विभिन्न विवशताओं के कारण लेख की आगे की किश्तें अभी नहीं छाप पा रहे हैं। इस बीच साथी हरणे ने भारतीय क्रान्ति की मंजिल के प्रश्न पर अपना लेख हमें भेजा है जिसे हम बहस के लिए छाप रहे हैं। —सम्पादक**

# बदली हुई विश्व परिस्थिति में क्रान्ति के स्तर निर्णय का प्रश्न

• पी. आर. हरणे

नब्बे के दशक में दो महत्वपूर्ण घटनाएं विश्व के पैमाने पर घटी हैं। एक है समाजवादी ढांचे का विश्व स्तर पर ढहना एवं दूसरे, पूंजी के वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) की प्रक्रिया का तीव्र एवं व्यापक स्वरूप अख्तियार करना) यह दूसरी, पूंजी के वैश्वीकरण की प्रक्रिया बहुत ही व्यापक पैमाने पर विवाद-बहस को जन्म दे रही है। अधिकांश कम्युनिस्ट पार्टियां एवं विचारक तथा समाजवादी विचारक इसे साम्राज्यवादियों का नवऔपनिवेशिक हमला करार दे रहे हैं; एवं आशंका उपस्थित कर रहे हैं कि विश्व अब फिर नये सिरे से नवऔपनिवेशिक गुलामी-शोषण-लूट के दौर में प्रवेश कर रहा है। इन पार्टियों, विचारकों का यह भय विशेष तौर पर एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के पिछड़े अविकसित, गरीब देशों की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। उनका तर्क है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के चलते पिछले कुछ दशकों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां आर्थिक-वित्तीय शक्ल के रूप में इन अविकसित देशों की अर्थव्यवस्था पर हावी हुई है। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां मुख्य रूप से या तो अमेरिकन हैं अथवा यूरोप की हैं। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के पिछड़े, गरीब देशों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं सस्ते श्रम का दोहन कर रही हैं एवं सुपर-मुनाफा कमा रही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की इस लूट के खिलाफ इन देशों में कम्युनिस्ट, समाजवादी, यहां तक की गांधीवादी विचारकों की तरफ से जबर्दस्त आवाज उठ रही है।

कहीं-कहीं विदेशी कम्पनियों के खिलाफ यह आवाज स्वदेशी के स्वर में उठायी जा रही है; देशभक्ति की भावना को आधार बना रही है। यह भी कहा जा रहा है कि यह बहुराष्ट्रीय पूंजी न केवल इन अविकसित देशों के प्राकृतिक साधनों एवं सस्ते श्रम की लूट तक सीमित है बल्कि इन देशों में देशीय-स्थानीय बाजार पर अपना शिकंजा मजबूत करना भी इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उद्देश्य है।

इस सारी प्रक्रिया में यह माना जा रहा है कि इन अविकसित देशों का सत्ताधारी वर्ग विदेशी कम्पनियों के सामने घुटने टेक रहा है अथवा इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, साम्राज्यवादी ताकतों की दलाली कर रहा है। इन देशों का सत्ताधारी वर्ग साम्राज्यवादियों के दलाल एजेण्ट, मिलीभगत, घुटनेटेकू, पिट्ठू की भूमिका निभा रहा है।

नतीजे के तौर पर वे इन देशों में अपने देशी सत्ताधारी वर्ग के अलावा अथवा ये कहिये सत्ताधारी वर्ग के साथ-साथ साम्राज्यवादियों-बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भी आज की परिवर्तित विश्व परिस्थितियों में क्रान्ति के, शोषित जनता के दुश्मन के रूप में पा रहे हैं। उनका मानना है कि इन देशों का सत्ताधारी वर्ग साम्राज्यवादियों-बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से स्वतंत्र कोई देशीय भूमिका— स्वदेशी रास्ता—अपनाने की स्थिति में नहीं है।

एक मत यह भी है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां मूलतः सभी देशों में एक जैसी भूमिका अदा कर रही हैं। जिस प्रकार ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तीसरी दुनिया के गरीबों का शोषण कर रही हैं वैसे ही अमेरिका अथवा यूरोप के मजदूर किसानों का शोषण करती हैं। केवल मात्रा का फर्क हो सकता है गुणात्मक रूप से कोई फर्क नहीं है।

दूसरी ओर, द्वितीय महायुद्ध के बाद तीव्रतर हुई औपनिवेशिक गुलामी से राष्ट्रीय मुक्ति की प्रक्रिया दक्षिण अफ्रीका एवं फिलिस्तीन के प्रश्न का एक ढंग से हल हो जाने के बाद निर्णायक अवस्था में पहुंच चुकी है। अब कोई देश किसी एक साम्राज्यवादी देश का गुलाम (बाजार के अर्थ में) नहीं बचा है। बल्कि प्रत्येक पिछड़े, पूर्व के औपनिवेशिक देश का बाजार भी आज सभी साम्राज्यवादी देशों के लिए खुला हो चुका है। सभी साम्राज्यवादी मुल्क एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सारे विश्व को एक अविभाजित—एक बाजार के रूप में पा रही हैं। एक समय समाजवादी खेमे के रूप में जो क्षेत्र था वह भी रूस एवं पूर्वी यूरोप में समाजवादी सत्ता के ढह जाने के बाद से साम्राज्यवादी-बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लूट के लिए खुल चुका है। तथाकथित समाजवादी देश मसलन चीन, वियतनाम, कोरिया, क्यूबा भी बाजार-समाजवाद के नाम पर अपनी अर्थव्यवस्था को खुला कर चुके हैं अब वहां भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

## क्रान्ति के स्तर अथवा लाइन का सवाल और मार्क्सवाद

क्रान्ति के स्तर अथवा लाइन का प्रश्न कम्युनिस्ट आन्दोलन में मार्क्स के जमाने में उस रूप में नहीं था जैसा कि आज है। पेरिस कम्यन के जमाने में राजनीतिक लाइन अथवा क्रान्ति के स्तर के प्रश्न ने विवाद का स्वरूप नहीं लिया था। रूस में पहली समाजवादी क्रान्ति के सफल होने के बाद 1917 से कम्युनिस्ट आन्दोलन में लाइन अथवा क्रान्ति के स्तर का प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया। बोल्शेविक क्रान्ति के जमाने में रूस के कम्युनिस्टों के दो महत्वपूर्ण प्रवाह बोल्शेविक एवं मेन्शेविकों के बीच रूस में क्रान्ति के स्तर को लेकर व्यापक बहस हुई एवं फरवरी क्रान्ति के बाद लेनिन की ऐतिहासिक कृति 'अप्रैल थीसिस' सामने आयी। 'अप्रैल थीसिस' के बाद के काल से ही समूचे विश्व मजदूर आन्दोलन में क्रान्ति के स्तर का प्रश्न विचार मंथन का विषय बन गया जिसे लेनिनवाद की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक देन, मार्क्सवाद में योगदान के रूप में देखा जा सकता है।

ऐतिहासिक तौर पर देखा जाये तो मार्क्स के सामने यूरोप का विकसित पूंजीवाद समाज था। उस समय एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के मुल्कों में मजदूर वर्गीय क्रान्ति एजेण्डा पर नहीं थी। अतः क्रान्ति के स्तर का प्रश्न उस समय कोई विचारणीय अथवा कम्युनिस्टों के मतभेद का विषय ही नहीं था।

इसके अलावा आज भी समाजवादियों के लिए क्रान्ति के स्तर के प्रश्न का क्रान्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। समाजवादी, गांधीवादी, लोहियावादी सभी सामान्य तौर पर क्रान्ति की बात करते हैं। क्रान्ति को सफल बनाने के लिए समाज में क्रान्ति के स्तर निर्णय का प्रश्न उनके लिए बेमानी है। जयप्रकाश नारायण सम्पूर्ण क्रान्ति की वकालत करते थे। डा. राम मनोहर लोहिया 'सप्त क्रान्ति' की बात करते थे। दलितों, अंबेडकरवादियों के लिए भी यह कोई बहस का मुद्दा ही नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल मार्क्सवादियों के लिए ही क्रान्ति का स्तर निर्णय एक महत्वपूर्ण रणनीति का प्रश्न है। इस प्रश्न ने कम्युनिस्टों के बीच विभाजन को जन्म दिया है और वह आज भी बरकरार है। आज भी नक्सलवादी इस प्रश्न पर अलग-अलग गुटों में बंटे हैं। हालांकि एक अन्य मुद्दा नक्सलवादियों में विभाजन का कारण है, वह है क्रान्तिकारी संघर्ष के स्वरूप का प्रश्न। सशस्त्र संघर्ष एवं जनसंघर्ष का प्रश्न। नक्सलवादी उसे ही क्रान्तिकारी मानते हैं जो सशस्त्र संघर्ष संगठित करने में लगे हैं। उनके द्वारा सी.पी.आई. एवं सी.पी.एम. को संसदवादी, चुनाववादी कहकर खारिज किया जाता है।

कम्युनिस्ट आंदोलन में एक काल ऐसा थां जब क्रान्ति के स्तर अथवा लाइन के सवाल पर एवं सशस्त्र संघर्ष एवं अन्य जनसंघर्षों के सवाल पर कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के बीच लम्बी, तीखी बहस हुआ करती थी।

चर्चा के मूल मुद्दे पर लौटा जाये तो हम देखेंगे कि आज विश्व परिस्थिति जो बदलाव आया है उसके चलते एक थीसिस यह आ रही है कि आज दुनिया के सभी देश समाजवादी क्रान्ति के स्तर में हैं। अगर ऐतिहासिक 'अप्रैल थीसिस' को आधार बनाया जाये तो हम पाते हैं कि क्रान्ति के स्तर के सवाल पर महत्वपूर्ण पहलू यह कि सत्ता किस वर्ग या वर्गों की हाथ में है एवं किस वर्ग या वर्गों को राजनीतिक सत्ता छीननी है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो क्रान्ति की मित्र शक्तियां कौन-कौन सी हैं एवं क्रान्ति विरोधी—क्रान्ति की दुश्मन शक्तियां कौन हैं। इस प्रक्रिया से जुड़ा हुआ एक अन्य प्रश्न है मध्यम शक्तियां जिन्हें क्रान्ति के प्रति तटस्थ अथवा मित्रतापूर्ण तटस्थता की भूमिका निभाना है। यही तय करना क्रान्ति का मूलभूत प्रश्न है।

आज के संदर्भ में इस बात का विशेष महत्व हो गया है। यूरोप एवं अमेरिका के कम्युनिस्ट आंदोलन में इस प्रश्न को लेकर कभी कोई समस्या नहीं रही है। समस्या है एशिया, अफ्रीका के विकासशील मुल्कों की जहां अभी भी विशाल क्षेत्र एवं आबादी उद्योग पर नहीं बल्कि कृषि एवं पुराने पारम्परिक व्यवसायों पर अपनी रोजी-रोटी के लिए निर्भर करती है। जहां भारत में अभी भी सामाजिक जीवन पुरानी जाति-व्यवस्था एवं प्रथाओं से परिचालित है। जहां धार्मिक अंधविश्वास एवं सामाजिक कुरीतियों का बोलबाला है। इन सब को सामंती व्यवस्था के अवशेषों की परिधि में रखा जाता है। अतः इन तमाम सामंती अवशेषों को नष्ट करने की ऐतिहासिक जिम्मेदारी आज मजदूरवर्गीय क्रान्ति के कार्यक्रम का अभिन्न अंग बन चुकी है। क्योंकि ये कुरीतियां अपने आप समय बीतने के साथ नष्ट होने वाली नहीं है, जैसा कि भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन ने जाति-व्यवस्था के बारे में सोचा था कि औद्योगिकरण-शिक्षा के प्रसार प्रचार के साथ-साथ जाति-व्यवस्था एवं सामाजिक कुरीतियां अपने-आप नष्ट जायेंगी अथवा भूमि सुधार औद्योगीकरण के साथ-साथ लागू हो जायेंगे।

यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि पूंजीपति वर्ग अब इन तमाम अवशेषों को नष्ट करने के बजाय उन्हें अपनी व्यवस्था को बरकरार रखने के लिए, आम जनता को विभाजित करने के लिए आवश्यक एवं उपयोगी मानता है। पूंजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था धार्मिक कट्टरता, रंगभेद, नस्लभेद आदि अवशेषों का बखूबी इस्तेमाल कर लोगों को आपस में लड़ा रही है। तीसरी दुनिया के पिछड़े मुल्कों में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों का नेतृत्व कहीं वहां के राष्ट्रीय बुर्जुआ ने किया तो कहीं कहीं पेटी-बुर्जुआ के नेतृत्व में जैसे दक्षिण अफ्रीका में संचालित हुआ। लेकिन इन सभी देशों में प्राक्-पूंजीवादी अवशेष आज भी अस्तित्वमान हैं। ये सभी देश मूलतः कृषि प्रधान हैं जिसका मतलब है इन देशों में बहुसंख्यक जनता खेती एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करते हुए अपनी आजीविका चलाती है।

इस प्रकार इन पिछड़े मुल्कों की विशाल आबादी एवं क्षेत्रों को प्राक्-पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों (भूमि) एवं सांस्कृतिक-सामाजिक अवशेषों को नष्ट कर समाज के जनवादी धर्मनिरपेक्ष मूल्यों पर पुनर्गठित करने का महत्वपूर्ण काम सर्वहारा क्रान्ति को करना है। और यहीं यह भ्रम निर्माण होता है कि इन सभी देशों में क्रान्ति अभी जनवादी क्रान्ति के स्तर में है हालांकि यह पुरानी जनवादी क्रान्ति से भिन्न नयी जनवादी क्रान्ति होगी। इसमें कोई दो मत नहीं है कि तीसरी दुनिया के मुल्कों के सामाजिक जीवन से इन प्राक्-पूंजीवादी अवशेषों को दूर किये बगैर समाजवाद का निर्माण सम्भव नहीं है। परन्तु इससे सत्ता के प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्रान्ति के स्तर का कोई सम्बन्ध नहीं है।

## सत्ताधारी वर्गों का चरित्र

यहां यह समझना आवश्यक है कि इन सभी देशों में सत्ताधारी वर्ग का चरित्र एक जैसा है। इनमें से किसी भी देश में सत्ताधारी वर्ग का कोई भी तबका क्रान्तिकारी आंदोलन की मित्र शक्ति की भूमिका निभाने लायक नहीं बचा है चाहे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी इस सत्ताधारी वर्ग का चरित्र निरूपण कैसे भी करें। यानी कि इन देशों के सत्ताधारी वर्गों को स्वतंत्र-सार्वभौम पूंजीपति वर्ग कहें, राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग कहें अथवा दलाल-साम्राज्यवादियों का कठपुतली कहें। साथ ही शोषित सर्वहारा वर्गों का संघर्ष इन्हीं सत्ताधारी वर्गों के खिलाफ चलाना होगा।

## साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष

दूसरा भ्रांति का पहलू, इन पिछड़े विकासशील मुल्कों में आज के भूमण्डलीकृत बाजार की अवस्था में विदेशी पूंजी- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में पैठ का—प्रभुत्व का प्रश्न भी बहुत अहम मुद्दा है। विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष की शोषणमूलक, पक्षपातपूर्ण नीतियों के खिलाफ इन मुल्कों में मजदूर-किसान विरोध संघर्ष संगठित कर रहे हैं। इन मुल्कों में साम्राज्यवादी लूट के खिलाफ भावना तीव्र है। अतः साम्राज्यवाद के खिलाफ; बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की लूट के खिलाफ संघर्षों को संचालित करने की रणनीति ठोस रूप से तय करनी होगी। साम्राज्यवाद के खिलाफ भावना का इन देशों में एक देशभक्ति का भी पहलू है इसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नकार नहीं सकते।

इसके अलावा साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा तीसरी दुनिया के अपेक्षाकृत कमजोर मुल्कों में घुसपैठ की सम्भावना भी बनी हुई है। हाल ही के इतिहास में इराक एवं बोस्निया पर हमला इन्हीं साम्राज्यवादी घिनौनी हरकतों के ज्वलंत उदाहरण हैं। अतः साम्राज्यवादी दखलंदाजी विशेष रूप से छोटे-कमजोर देशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने के लिए किस हद तक जा सकती है इसका अंदाज लगाया जा सकता है। साम्राज्यवादी दखलंदाजी की स्थिति में इन देशों का सत्ताधारी वर्ग समूचे साम्राज्यवादियों की कठपुतली की भूमिका निभायेगा अथवा साम्राज्यवादी दखलंदाजी के खिलाफ जनता के क्रान्तिकारी आंदोलन के पक्ष में खड़ा होगा यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को प्रत्येक देश में क्रान्ति की रणनीति निश्चित करते समय ध्यान में रखना होगा।

वहीं शान्तिपूर्ण स्थितियों में समूचा सत्ताधारी वर्ग इन मुल्कों में क्रान्ति के विरोध में ही खड़ा होगा। यहां एक अन्य प्रश्न महत्वपूर्ण है वह यह कि शोषित अपने प्रश्न को लेकर जब संघर्ष का रास्ता अख्तियार करता है तब एक ही सत्ता उस पर लाठी गोली बरसाती है। फिर आप उस सत्ता को सामन्ती कहें, साम्राज्यवादियों का दलाल कहें अथवा पूंजीवादी। और उस सत्ता के संचालक सत्ताधारी वर्ग को सामंती कहें, साम्राज्यवादियों का दलाल कहें अथवा पूंजीवादी। फिर इस सवाल पर क्रान्तिकारियों के इतने गुटों में विभाजन की क्या सार्थकता है।

क्या जनता की जिन्दगी को प्रभावित करने वाले इस व्यवस्था से उपजे मूल प्रश्नों-समस्याओं पर क्रान्तिकारी, संघर्ष का एक साझा मोर्चा नहीं बना सकते। क्रान्तिकारियों के लिए शोषित जनता के जीवन की दुर्दशा मूल बात होनी चाहिए अथवा उनकी अपनी तथाकथित विशिष्टता एवं उसका आग्रह। हमारे देश में आज के हालातों में क्रान्तिकारी पार्टी एवं ग्रुपों का विभाजन एवं सत्ताधारी वर्ग के चरित्र के स्वरूप का निर्धारण के प्रश्न पर उनमें मौजूद आपसी मतभेद मजदूर किसान जनता के आंदोलनों संगठित करने के रास्ते में बहुत बड़ी रुकावट बना हुआ है।

## व्यापक किसान जनता को समाजवाद के पक्ष में लामबंद करना जरूरी

नव जनवादी क्रान्ति अथवा समाजवादी क्रान्ति इन दोनों क्रान्ति के बीच चीन की दीवार नहीं है एवं वर्गों के विन्यास में भी धनी किसान एवं राष्ट्रीय बुर्जुआ की भूमिका का प्रश्न ही महत्वपूर्ण रहता है। भारत जैसे देश में आज भी व्यापक संख्या में किसानों की संख्या सामान्य किसानों की ही है एवं भूमिहीन किसानों एवं गरीब किसानों की है। इस व्यापक किसान जनता की क्रान्ति में क्या भूमिका होगी यह अवश्य ही महत्वपूर्ण सवाल है। लेकिन चीनी क्रान्ति के जमाने से यह एक विचित्र समझ बन गई है कि जनवादी क्रान्ति में किसानों की भूमिका होती है लेकिन समाजवादी क्रान्ति में किसानों की कोई भूमिका नहीं होती है। या यों कहिये कि अपने आपको नक्सलवादी कहलाने वालों ने, माओवादी कहलाने वालों ने इस समझ को दृढ़ करने में काफी भूमिका निभायी है। जबकि आज व्यापक किसान जनता को समाजवाद के पक्ष में लामबंद करने के लिए किसान-ग्रामीण जनता के बीच हमारे देश में भी वैचारिक संघर्ष चलाने की जरूरत क्रान्तिकारियों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती बन गयी है। इस काम में जटिलता इस बात में निहित है क्योंकि किसानों में सम्पत्ति के मालिकाने की भावना गहरी जड़ें जमाये रहती है। खेती में निजी मालिकाना के स्थान पर सामूहिक खेती, सामूहिक मालिकाना के आधार पर ग्रामीण जीवन का पुनर्गठन बहुत महत्वपूर्ण काम है जिसे क्रान्तिकारियों को वैचारिक संघर्ष चलाते हुए हल करना होगा।

## अन्त में

जहां एक ओर विकासशील, पिछड़े मुल्कों में सत्ताधारी वर्ग के चरित्र का ठीक-ठीक मूल्यांकन आवश्यक है वहीं यहां की विशाल ग्रामीण आबादी, इन देशों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की घुसपैठ एवं साम्राज्यवादी शक्तियों की दखलंदाजी का भी सटीक मूल्यांकन आवश्यक है। लेकिन यह करते हुए, उपरोक्त प्रश्नों पर व्यापक वैचारिक बहस चलाते हुए भी आम जनता के इन स्थितियों से उपजे मूलभूत ज्वलंत सवालों पर सारे कम्युनिस्टों को एक मंच पर आकर संघर्ष संगठित होगा। अन्यथा आज जैसे विकट परिस्थिति में लाइन अथवा वैचारिक मतभेद के आधार पर आपसी फूट निर्माण करना मजदूर आंदोलन के लिए ही अंततोगत्वा घातक होगा। •

# जनमुक्ति की अमर गाथा: चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा ( भाग चार )

## चिङकाङशान के पहाड़ों में

चिङकाङशान

**1.** 1927 में कुओमिन्ताङ राष्ट्रवादी सरकार ने च्याङ काई शेक के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों के खिलाफ शहरों और देहातों में जबर्दस्त हमला बोल दिया। इस हमले में कम्युनिस्टों को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। इस कठिन परिस्थिति में "शरद फसल विद्रोह" के लिए माओ ने पहली मजदूर किसान क्रान्तिकारी सेना का गठन करने के लिए मजदूरों-किसानों की भरती की। इस नयी क्रान्तिकारी सेना में सिर्फ 8000 सैनिक थे, जिनके पास हथियार के नाम पर भाले आदि कुछ परम्परागत हथियार थे और कुछ राइफलें थीं। लेकिन देहातों में सशस्त्र संघर्ष शुरू करने में इसने शुरुआती कदम उठाये।

कुओमिन्ताङ के आतंक के इन दिनों में माओ को भी गिरफ्तार कर लिया गया था और उन्हें भी मार डालने का आदेश हो चुका था। लेकिन अपने साहस और सूझबूझ के दम पर माओ हत्यारी राष्ट्रवादी सेना के चंगुल से भाग निकले। माओ का मौत के मुंह से इस तरह बच निकलना किसी चमत्कार से कम नहीं था।

1933 में गरीब किसानों के नेताओं के सम्बोधित करते हुए माओ त्से तुङ

लालसेना पर हमले को तैयार होते क्वोमिन्ताङ के सैनिक

### लाल सेना के लिए अनुशासन के तीन नियम

1. अपनी सभी कार्रवाइयों में आदेशों का पालन करो।
2. जनता से एक भी सुई या धागे का एक भी टुकड़ा मत लो।
3. जब्त की गयी हर चीज़ को वापस कर दो।

### "ध्यान देने योग्य" आठ बातें

1. जनता से विनम्रता के साथ बोलो।
2. जिस चीज को खरीदो उसकी उचित कीमत दो।
3. उधार ली गयी हर चीज़ वापस कर दो।
4. हर नुकसान के लिए हर्जाना दो।
5. जनता को ठेस मत पहुंचाओ और गाली मत दो।
6. फसलों को नुकसान मत पहुंचाओ
7. स्त्रियों के साथ उच्छृंखल व्यवहार मत करो।
8. बन्धकों के साथ बुरा बर्ताव मत करो।

**2.** माओ अपनी सैनिक टुकड़ी से फिर जा मिले। इस महत्वपूर्ण मुकाम पर उन्होंने एक महत्वपूर्ण फैसला लिया – देहाती क्षेत्र में एक आधार कायम करने और एक नये तरह की मुक्ति सेना का निर्माण करने के लिए "चिङकाङशान पर्वत पर चढ़ने " का फैसला। कई पार्टी नेताओं ने इसका विरोध किया। इन लोगों ने शहरों में क्रान्ति शुरू करने की वकालत की। इस समय तक चीन में मजदूरों की संख्या सिर्फ चालीस लाख थी। जबकि किसानों की आबादी पचास करोड़ थी। इस समय संघर्ष भी उतार पर था और क्रान्ति को नये सिरे से अपनी शक्ति अर्जित करने की जरूरत थी। लेकिन इस सच्चाई की अनदेखी करते हुए कुछ पार्टी नेताओं ने सैन्य हमले जारी रखने के आदेश दिये जिनके सफल होने की कोई उम्मीद नहीं थी।

लेकिन माओ ने सच्चाई से आंखें चार करते हुए भिन्न लाइन का अनुसरण किया। उन्होंने चीनी क्रान्ति को देहातों में शुरू करने की बात कही और लाल राजनीतिक सत्ता को भौतिक एवं आर्थिक मजबूती देने के लिए आधार क्षेत्रों को कायम करने और उनका विस्तार करने पर जोर दिया। उनकी यह दृढ़ मान्यता थी कि केवल इसी रास्ते पर चलकर जनता का समर्थन हासिल किया जा सकता है और शहरों की घेरेबन्दी एवं उन पर कब्जा किया जा सकता है। माओ ने कहा कि "जन सेना के बिना जनता निरीह है।" 20 सितम्बर को माओ ने अपनी टुकड़ी की एक मीटिंग बुलायी जिसमें सिर्फ 1000 सैनिक थे। उन्होंने सैनिकों से पूछा: "हमारे अन्दर क्रान्ति को आगे बढ़ाने की हिम्मत है या नहीं?" और एकत्रित समूह ने गर्जना की: "हिम्मत है।"

**3.** सिर्फ 800 व्यक्तियों और 200 राइफलों के साथ माओ ने जोखिम भरे, कीचड़ भरे पहाड़ी रास्तों से चिङकाङशान का सफ़र शुरू किया। हर रात को जब शिविर में सेना रुकती तो माओ सैनिकों के बीच भाषण देते। उन्हें यह बताते कि पिछली लड़ाइयों में क्या गलतियां हुईं। क्रान्ति के लक्ष्य के बारे में उन्हें बताते। चिङकाङशान के रास्ते में माओ ने एक अन्य महत्वपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने हर सैनिक दस्ते में एक पार्टी ग्रुप, हर कम्पनी में एक पार्टी सेल और हर बटालियन में एक पार्टी कमेटी की स्थापना की। पार्टी सदस्यों को माओ "शिक्षक प्रतिनिधि" कहते थे क्योंकि उनका काम सैनिकों को शिक्षित करना था, उनकी राजनीतिक चेतना को ऊंचा उठाना तथा उनके हौसलों को बुलन्द रखना था। जैसा कि माओ कहते थे: "पार्टी बन्दूक को नियंत्रित करती है और बन्दूक को पार्टी नियंत्रित करने की इजाजत कभी नहीं देनी चाहिए।"

चिङकाङशान के ऊबड़-खाबड़ बीहड़ रास्तों और यहां रहने वाले लोगों को माओ अच्छी तरह जानते थे। वे यहां कई बार आ चुके थे, लोगों से बातें की थीं और उनके साथ रहे थे। इस उजाड़ पर्वतीय इलाके में सिर्फ पांच गांव बसे थे जहां कुल दो हजार से भी कम लोग रहते थे। इस पहाड़ के चारों ओर पथरीली चट्टानों और खड्डों से भरे मैदान थे। सिंचाई की सुविधाओं की कमी और ललछौंही मिट्टी के कारण इनमें खेती करना कठिन था। भीषण गरीबी में जीने के कारण यहां के लोगों को नीची नज़र से देखा जाता था। लेकिन माओ को पूरा विश्वास था कि यहां के लोग क्रान्ति के पक्ष में खड़े होंगे। जमीन्दारों के खिलाफ उनके संघर्षों का एक लम्बा इतिहास रहा था। चिङकाङशान के पहाड़ों में रहने वाले हक्का नामक राष्ट्रीय अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों में से बहुतेरे बगावती दस्यु बन गये थे। वे पहाड़ी किलेबन्दियों और उनके चारों ओर के मैदानों में ऐसे रास्तों पर भटकते रहते थे जिसे सिर्फ वे ही जानते थे। माओ ने उनके साथ एकता कायम की और वे लाल सेना के खुफिया नेटवर्क के अंग बन गये।

दिसम्बर 1927 के कैण्टन विद्रोह के बाद कम्युनिस्टों का कत्लेआम

चाङकाङशान पर चढ़ाई के दौरान लाल सेना का नेतृत्व करते माओ – एक पेण्टिंग।

**4.** लाल सेना भूमिहीन किसानों, प्रतिक्रियावादी सेनाओं के भगोड़ों और बागी डाकुओं से बनी थी। हालांकि दुश्मनों के खिलाफ उनके मन में गहरी नफ़रत थी। लेकिन उनकी राजनीतिक समझदारी काफी कम थी। अधिकांश सैनिक अधिकारी और आम सैनिक पुराने ढंग से आचरण करते थे। हालत यह थी कि यदि उन्हें लूटपाट करने के लिए मना किया जाता तो वे बगावत कर देते थे। लेकिन माओ ने जनता में विश्वास नहीं खोया। उन्होंने बागी आवारागर्दों की इस भीड़ को राजनीतिक रूप से सचेत और अनुशासित सेना में ढालने के तरीके और सिद्धान्त विकसित किये।

माओ ने लाल सेना के लिए नियम बनाए – अफ़सर सिपाहियों को कभी न मारे-पीटें। दोनों की तनख्वाहें बराबर होंगी। सिपाहियों को अपने अफ़सरों से बहस करने और उनकी आलोचना करने का अधिकार होगा और सेना के सभी खर्चे जनता के मुआयने के लिए खुले होंगे। जब लाल सेना किसी कस्बे से गुज़रती थी तो माओ तत्काल वहां के निवासियों की मीटिंग बुलाते थे। लेकिन हमेशा यह आसान नहीं होता था। एक कस्बे में लोग डर के मारे पहाड़ों में भाग गये और झाड़ियों में छुप गये। किसी सेना के आने पर ऐसा अक्सर होता था। लेकिन माओ ने सिपाहियों को आदेश दिया कि वे न तो किसी घर में घुसें और न ही कोई सामान उठायें। तीसरे दिन पहाड़ी ढलानों पर अपने छुपने की जगहों से यह सब देख रहे लोग वापस आ गये। माओ ने जमीन्दारों से जब्त किये गये पैसों और कपड़ों को उनके बीच बांट दिया। उन्होंने लोगों को बताया कि लाल झण्डे वाली यह सेना उनकी अपनी सेना है, जो उनके हितों की रक्षा और उनकी मुक्ति के लिए समर्पित है। यह सब देख-सुन लोग भावाकुल हो गये। उन्होंने सिपाहियों को खाना खिलाया, रहने के लिए जगहें दीं। उनमें से कुछ लाल सेना में भी शामिल हो गये। जहां भी माओ की सेना जाती यह दृश्य दुहराया जाता।

किसान अब तक लूटपाट, हत्याएं, बलात्कार और आगजनी करने वाली सेनाओं के आदी बन चुके थे। लेकिन, लाल सेना के रूप में चीनी जनता ने पहले की तमाम सेनाओं से बिलकुल अलग किस्म की एक नयी सेना को देखा जो उनका उत्पीड़न करने नहीं बल्कि उनकी मुक्ति के लिए बनी थी।

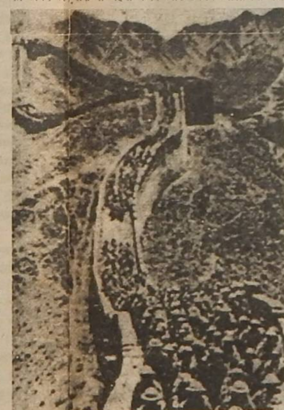

चीन की महान दीवार पर मार्च करती जापानी साम्राज्यवादी सेना

**5.** 1927-28 के जाड़ों के दिन चिङकाङशान पहाड़ों में अस्तित्व के लिए संघर्ष के दिन थे। सबसे बड़ी समस्या खाने और कपड़े की थी। महीनों तक सैनिक सिर्फ कद्दू खाकर जिन्दा रहे। उन्होंने एक मजाकिया नारा गढ़ लिया था – "पूंजीवाद का नाश करो और कद्दू खाओ।" लाल सेना अपना भोजन भूखे किसानों को लूटकर नहीं हासिल करती थी। उसने जनता से एकता कायम की और कृषि क्रान्ति को आगे बढ़ाया – जमीन्दारों से जमीनें जब्त कीं और उन्हें किसानों में बांट दिया। माओ ने किसान मिलीशिया भी संगठित किया जिससे किसान खुद अपनी हिफाजत कर सकें। यहां तक कि 11-12 साल के बच्चे भी पहरेदारी और सन्तरी का काम करने लगे।

माओ हर राजनीतिक कार्य को निर्देशित करते थे। उनका मानना था कि राजनीतिक विभाग "सेना के सभी कार्यों की जीवनी शक्ति है।" सैनिकों को क्रान्ति का इतिहास, विदेशी आक्रमण का इतिहास और जन नेतृत्व एवं संगठन की शिक्षाएं दी गयीं। शत्रु की सैन्य टुकड़ियों के बीच प्रचार कार्य चलाने के तरीकों, गीत गाने और भाषण देने के तरीकों में निपुण बनाने के लिए क्लास लिये गये। माओ का कहना था कि लाल सेना का काम सिर्फ लड़ना नहीं है। लाल सेना को जनता के बीच राजनीतिक शिक्षा का काम करना चाहिए, जनता को संगठित और हथियारबन्द करना चाहिए, जमीन्दारों के खिलाफ, संघर्ष शुरू करने, क्रान्तिकारी सरकार बनाने और पार्टी का निर्माण करने में उसकी मदद करनी चाहिए। सर्वोपरि तौर पर उसे क्रान्तिकारी कार्यों के लिए कोष एकत्र करना चाहिए।

माओ का मानना था कि लाल सेना को किसानों पर बोझ नहीं बनना चाहिए। इसलिए सेना ने खेती के कामों में किसानों की मदद की और अपनी भोजन की जरूरतों को पूरा करने के लिए नये खेत बनाये। उन्होंने एक छोटा अस्पताल और चीनी औषधि युक्त जड़ी-बूटियों का एक दवाखाना भी खोला तथा लोगों को स्वास्थ्य और साफ-सुथरा रहने की शिक्षा दी। अब तक किसी सेना ने किसानों की इस तरह मदद नहीं की थी। और न ही इससे पहले किसी सेना ने किसानों के उज्ज्वल भविष्य के लिए इस तरह की उम्मीदें लगायीं थी।

**6.** 1928 के शुरुआती महीनों में माओ को कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति से बर्खास्त कर दिया गया और उनकी कार्रवाइयों की आलोचना की गयी। ली ली-शान जैसे पार्टी नेता शहरों में सशस्त्र आम बगावतों के लिए आह्वान करते रहे। लेकिन माओ न तो पार्टी के खिलाफ खड़े हुए और न ही उन्होंने क्रान्ति की विजय के बारे में अपनी सोच को बदला। वह पूरे आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ते रहे, और आधार क्षेत्रों में लाल सेना का निर्माण करते रहे।

चिङकाङशान में माओ ने चीनी क्रान्ति की रणनीति और रणकौशल के बारे में अपने चिन्तन का विकास किया। इसमें उनका प्रतिभापूर्ण सैन्य सिद्धान्त भी शामिल था। छापामार युद्ध और चलायमान युद्ध लाल सेना के संघर्ष के मुख्य रूप थे। चूंकि लाल सेना सरकारी सेनाओं से काफी कमजोर थी। इसलिए तुरन्त विजय असम्भव थी। इसलिए माओ का कहना था कि एक दीर्घकालिक युद्ध की रणनीति आवश्यक है जिससे धीरे-धीरे शक्ति सन्तुलन को अपने पक्ष में किया जा सके। माओ ने कहाकि हमारी रणनीति है: "दस के मुकाबले एक को लड़ाओ" और हमारा रणकौशल है: "एक के मुकाबले दस को दफ्न करो"। मतलब यह कि लाल सेना को अपनी शक्ति को संकेन्द्रित करना चाहिए जिससे शत्रु पर संख्यात्मक रूप से वरीयता स्थापित कर हर युद्ध में जीत हासिल की जा सके। उसे अपनी ताकत को बचाना चाहिए, दुश्मन का सफाया करना चाहिए और अन्ततः निर्णायक विजय हासिल करनी चाहिए। माओ ने गुरिल्ला युद्ध के अन्य सिद्धान्तों को भी विकसित किया। जैसे – "जनता को जागृत करने के लिए उसके बीच अपनी ताकत को बिखेर दो और दुश्मन का मुकाबला करने के लिए अपनी ताकत को केन्द्रित करो। और

1930 के आसपास किसान मिलीशिया द्वारा दुश्मनों के खिलाफ उपयोग में लायी जाने वाली हाथ से बनी बन्दूक

"जब दुश्मन आगे बढ़े तो हमें पीछे हटना चाहिए; जब दुश्मन रुके तो हमें उसे चैन की सांस नहीं लेने देना चाहिए; जब दुश्मन थक जाये तो हमें हमला करना चाहिए; जब दुश्मन पीछे हटे तो हमें आगे बढ़ना चाहिए।"

1930 के दशक के शुरुआती वर्षों में कियाङशी में कम्युनिस्टों को गिरफ्तार करती क्वोमिन्ताङ की सेनाएं

### माओ के अनुसार जीतने के लिए पांच जरूरतें

1. जनता का समर्थन
2. पार्टी संगठन
3. मजबूत छापामार सेना
4. सैनिक कार्रवाइयों के लिए अनुकूल क्षेत्र
5. आर्थिक आत्म-निर्भरता

(पेज 8 पर जारी)

1931 में क्वोमिन्ताङ की घेरा डालो मुहिम को पराजित करने के बाद लौटते लाल सेना के सैनिक

# चिङकाङशान के पहाड़ों में

(पेज 7 से आगे)

**7.** जनवरी 1929 में माओ 4000 सैनिकों के साथ चिङकाङशान से दक्षिण एक दूसरा आधार विकसित करने के लिए चले गये। माओ के जाने के बाद चिङकाङशान पर हमला हुआ उसे लगभग पूरी तरह खाली करा दिया गया। मार्च तक, कुछ भूमिगत ग्रुपों और गुप्त किसान मिलीशिया को छोड़कर चिङकाङशान पहले जैसी महत्वपूर्ण शक्ति नहीं रहा। लेकिन माओ ने एक नये आधार का निर्माण किया। उन्होंने कियाङसी में तीसरी लाल सेना के रूप में छोटे छापामार दस्तों को संगठित किया। पश्चिमी फुकीन के छापामार दस्तों को बारहवीं सेना के रूप में संगठित किया गया। चौथी सेना को मिलाकर माओ के साथ अब तीन सेनाएं और 10000 सैनिक थे।

1930 के दशक में गठित एक किसान मिलीशिया

1931 में बनी पहली अखिल- चीनी सोवियत सरकार के नेताओं के साथ माओ त्से-तुङ (दायें से दूसरे)

**8.** जब-जब माओ की कार्यदिशा पर अमल नहीं किया गया तब-तब क्रान्ति को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिए माओ को चाङशा जैसे शहर पर कब्जा करने के लिए आदेश दिया गया जहां क्रान्ति की शक्तियां बहुत अधिक मजबूत नहीं थीं। क्वोमिङताङ ने अमेरिकी, ब्रिटिश, इंतालवी और जापानी सेनाओं की मदद से इस शहर पर भारी बमबारी की। इसमें सैकड़ों नागरिक हताहत हुए और लाल सेना को नष्ट होने से बचाने के लिए माओ ने पीछे हटने का फैसला लिया। कुओमिन्ताङ ने जमकर कत्लेआम मचाया और भारी संख्या में मजदूरों, छात्रों और हर ऐसे व्यक्ति की हत्या की गयी जिसे कम्युनिस्ट होने का सन्देह था। चाङशा में भूमिगत कार्य कर रही माओ की पत्नी याङ-काई-हुई को गिरफ्तार कर उनकी हत्या कर दी गयी।

गलत कार्यदिशा के अमल से होने वाली पराजयों के बाद हतोत्साहित सेना में नये सिरे से उत्साह का संचार करने के लिए माओ ने धैर्यपूर्वक सैनिकों के सामने पराजय के कारणों का विश्लेषण किया और उन्हें फिर से संघर्ष के लिए तैयार किया।

## चीनी क्रांति की सचित्र कथा

जनवरी 1934 में सम्पन्न दूसरे अखिल सोवियत कांग्रेस में माओ का भाषण सुनता जनसमूह

1930 के दशक के आरम्भिक वर्षों में माओ त्से तुङ

1932 में कियाङशी आधार-क्षेत्र में लाल सेना की एक टुकड़ी

**9.** 1930 तक माओ 17 काउण्टियों में अपना आधार विस्तारित कर चुके थे। इन क्षेत्रों में जमीनें फिर से बांटी गयीं, जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित किया गया और विभिन्न प्रकार के संघों एवं मिलीशिया में संगठित किया गया। इससे लाल सेना और पार्टी मजबूत हुई। नवम्बर 1931 में माओ कम्युनिस्टों द्वारा कायम पहली क्रान्तिकारी सरकार अखिल-चीन सोवियत सरकार के अध्यक्ष चुने गये। इस नये गणराज्य ने एक संविधान, भूमि सुधार, श्रम, विवाह एवं स्त्रियों की समानता के लिए कानून बनाये और लाल सेना एवं राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों के लिए प्रस्ताव पारित किये।

**10.** 1930 में च्याङ काई शेक ने कम्युनिस्टों के खिलाफ चलाये गये पांच "सफाया अभियानों" में से पहले की शुरुआत की। उसकी सेनाएं लाल सेना से दस गुनी बेहतर थीं, लेकिन पहले चार अभियानों में उसे मुंह की खानी पड़ी। इसी बीच जापान ने चीन पर हमला कर दिया लेकिन जापानी हमले का मुकाबला करने के बजाय उसने 9 लाख सैनिकों और 300 बमवर्षकों के साथ लाल सेना पर हमला कर दिया जिसके पास उस समय पिछड़े किस्म के हथियारों से लैस, सिर्फ एक लाख चालीस हजार सैनिक थे। च्याङ ने "घर फूंक नीति" अख्तियार की और उसकी सेना जहां भी पहुंची वहां ताण्डव मचाया। अगस्त 1933 में च्याङ का पांचवां सैन्य अभियान शुरू हुआ। इस अभियान के लिए अमेरिका और ब्रिटेन से भारी मात्रा में धन, 10 लाख सैनिक, टैंक, हवाई जहाज मिले और जर्मन सैन्य विशेषज्ञों ने अपनी सलाहें दीं। अगस्त 1934 तक लाल सेना की संख्या सिर्फ एक लाख रह गयी और पूरी तरह क्वोमिङताङ की सेनाओं से घिर गयी थी। केन्द्रीय आधार इलाके सिकुड़कर अब सिर्फ छह काउण्टियों में सीमित रह गये थे और छोटे आधार क्षेत्र पूरी तरह नष्ट हो चुके थे। एक बार फिर क्रान्ति के पूरी तरह कुचल दिये जाने का खतरा पैदा हो गया था लेकिन एक बार फिर माओ ने एक और महत्वपूर्ण निर्णय लिया। 16 अक्टूबर 1934 को उन्होंने अपनी सेनाओं को पीछे हटने के महा अभियान का नेतृत्व शुरू किया जो 'लम्बे अभियान' (लांग मार्च) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(अगले अंक में जारी)

अगले अंक में पढ़िए – महान लम्बे अभियान के दौरान चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता माओ त्से तुङ और उनके बहादुर साथियों के शौर्य और जीवन-मृत्यु के संघर्ष की गौरवगाथा।

# सूखा यह प्राकृतिक आपदा नहीं है, इसे मुनाफे की हवस पर टिकी व्यवस्था ने पैदा किया है

(पेज 1 से आगे)

सामना करना पड़ेगा। मौजूदा सूखे के शुरुआती संकेत तो पिछले वर्ष सितम्बर में ही मिल गये थे जब इन इलाकों में सामान्य से बहुत कम बारिश हुई थी। इसके बावजूद राज्य सरकारें हाथ पर हाथ धरे बैठी रहीं और केन्द्र सरकार भी सोई रही जब तक कि स्थिति बद से बदतर नहीं हो गई। ऐसा नहीं है कि केन्द्र सरकार स्थिति से अनभिज्ञ थी। इस वर्ष के आर्थिक सर्वेक्षण में पश्चिम भारत के एक बड़े हिस्से में मानसून की विफलता का विस्तार से उल्लेख है। लेकिन सरकार का इस बात पर कितना ध्यान है, यह इसी से पता चलता है कि विगत 24 अप्रैल को जब संसद में सूखे पर चर्चा होनी थी तब लगभग बीस सदस्य मौजूद थे, उनमें से भी आधे अर्द्ध निद्रा में विलीन था।

तथाकथित उन्नत प्रदेश आंध्र प्रदेश के किसान भुखमरी के कगार पर खड़े हैं और आत्महत्या करने और अपने गुर्दे और अपने बच्चों तक को बेचने के लिए मजबूर हैं। सूखे के बाद से लगभग दस किसान आंध्रप्रदेश में आत्महत्या कर चुके हैं। प्रधानमंत्री वाजपेयी पीड़ितों की सहायता के लिए उदारतापूर्वक दान करने की तो अपीलें जारी करते हैं पर विश्व बैंक और पूंजीपतियों की संस्थाओं के निर्देशों के आगे उनकी सारी करुणा सूख जाती है जो साफ कह रही हैं कि सब्सिडी में कटौती और वित्तीय अनुशासन कड़ा करना सबसे जरूरी है, चाहे सैकड़ों लोग भूख से मर जाएं। "सूखा मुख्यमंत्री" आये दिन तरह-तरह की घोषणाएं कर रहे हैं, जैसे कि गुजरात के "सूखा मुख्यमंत्री" ने कहा कि मेरे राज्य में कोई प्यासा हो सकता है भूखा नहीं लेकिन अगले तीन-चार दिनों में खबर आई कि अन्जारिया गांव में दो किसान भूख से मर गये।

पूंजीवादी व्यवस्था की बर्बरता की इससे बड़ी मिसाल क्या हो सकती है कि इस समय केन्द्रीय अनाज भंडार में रिकार्ड स्तर पर गेहूं-चावल भरा हुआ है, फिर भी देश के करोड़ों लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। सिर्फ पेट भर खाने के लिए अपने गुर्दे और बच्चों तक को बेचने के लिए मजबूर हो रहे हैं। लेकिन विश्व बैंक के दबाव में सरकार जबानी जमा खर्च से ज्यादा कुछ नहीं कर रही है।

विश्व बैंक का आदेश है, चाहे सूखा पड़े या चक्रवात आये, बाढ़ आये या अकाल—कोई भी चीज निःशुल्क (वैसे निःशुल्क तो पहले भी कुछ नहीं मिलता था अलबत्ता जन कल्याण के नाम पर कुछ सब्सिडी जरूर मिलती थी) नहीं मिलेगी, भले ही खाद्य निगम के गोदामों में पड़ा-पड़ा गेहूं सड़ जाये।

बड़ी खैरख्वाही दिखाते हुए सरकार ने सूखा पीड़ितों की सहायता के लिए प्रति परिवार 20 किलो अतिरिक्त अनाज गरीबी रेखा से नीचे की कीमतों पर उपलब्ध कराने का एलान किया है। यह हद दर्जे की बनियागिरी है। इसलिए कि केन्द्र सरकार ने अभी दो महीने पहले ही गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए गेहूं और चावल की कीमतों में 80 प्रतिशत से ज्यादा की बढ़ोत्तरी की है और सूखा पीड़ितों को इस बढ़ी हुई कीमत पर अतिरिक्त अनाज उपलब्ध कराने की दानवीरता एक क्रूर मजाक से ज्यादा कुछ नहीं है।

कितने सूखापीड़ितों में यह सामर्थ्य या क्रयशक्ति बची होगी कि वे बढ़ी हुई दरों पर अतिरिक्त अनाज खरीद पायें?

अगर उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत के बाद ग्रामीण रोजगार योजनाओं, पेयजल और सिंचाई, भूमि संरक्षण और जल प्रबंधन आदि कार्यक्रमों के बजट में वित्तीय घाटे को काबू में करने के नाम पर अत्यधिक कटौती न की गई होती तो सूखे की मार का इतना भयानक असर नहीं होता। यह एक भयावह सच्चाई है कि केन्द्र और राज्य सरकारों ने पिछले एक दशक में प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की जो कमजोर और ढीली-ढाली मशीनरी थी उसे भी ध्वस्त कर दिया है। अब अपेक्षाकृत छोटी और कम तीव्रता की प्राकृतिक आपदाओं में भी किसी सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा कवच के अभाव में लोगों को भारी पीड़ा और तकलीफ भुगतनी पड़ेगी। यही कारण है कि भले ही मौजूदा सूखा सदी का सबसे बड़ा सूखा न हो या 1997-98 के सूखे की तीव्रता इसके मुकाबले बहुत ज्यादा रही हो, लेकिन इस सूखे का प्रकोप और सूखा पीड़ितों की पीड़ा उनसे कहीं बढ़कर है।

विश्व बैंक मुद्रा कोष के दबाव में वित्तीय घाटे को कम करने के अभियान की गाज जिन कार्यक्रमों, योजनाओं और मंदों पर गाज गिर रही है, उससे न सिर्फ प्राकृतिक आपदाओं की बारंबारता और तीव्रता बढ़ती जा रही है बल्कि उससे बचाव के उपाय भी सीमित होते जा रहे हैं। ग्रामीण रोजगार योजनाओं के लिए 1999-2000 के बजट में 3795 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था लेकिन खर्च 3729 करोड़ रुपये ही हुए और 2000-01 के बजट में मात्र 2655 करोड़ रुपये ही रखा गया है। इस भारी कटौती का कितना घातक प्रभाव पड़ सकता है, इसका थोड़ा अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1998-99 में राजस्थान में खेतिहर मजदूरों की वास्तविक मजदूरी में लगभग 14 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई है, इसे स्वयं केन्द्र सरकार के 1999-2000 के आर्थिक सर्वेक्षण में स्वीकार किया गया है।

ऐसे दर्जनों उदाहरण और दिये जा सकते हैं। प्रत्यक्षतः सरकार की लापरवाही सूखे के लिए जिम्मेदार है। सूखे के कारणों की पड़ताल से यह और भी स्पष्ट हो जाता है। जब अंग्रेज भारत आये थे तो यहां की वर्षा की मात्रा से चकित रह गये थे। लेकिन सबसे ज्यादा वर्षा वाले इस देश में भी अगर सूखा पड़ता है दुर्व्यवस्था को ही दोषी ठहराया जा सकता है। सूखा ऐसी परिघटना नहीं जिसका पहले से पता न लगाया जा सके। जल-व्यवस्था का सरकार के पास कोई कार्यक्रम नहीं है। यह सिर्फ तभी कोई प्रतिक्रिया देती है जब कुछ सौ किसान आत्महत्या कर लें, हजारों की संख्या में मवेशी मर जायें। भारत की स्थितियों में एक सक्षम जल-व्यवस्था अपरिहार्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में जल-संग्रह की पारम्परिक पद्धतियां विलुप्त होती जा रही हैं। वर्षा जल संग्रह तो एकदम ही समाप्त हो गया है। भारी संख्या में ट्यूबवेल लगाये जा रहे हैं जिससे जल-स्तर बहुत तेजी से घटता जा रहा है। बारिश का कीमती पानी बेकार बहा जा रहा है। जल-स्तर घटने के कारण नदियां, तालाब, सोते, और कुएं सूखते जा रहे हैं। शहरों में बड़े-बड़े ट्यूबवेल लगाये जा रहे हैं। शहरों के समृद्ध इलाकों में भूजल का भयंकर और अनियंत्रित दोहन किया जा रहा है। भूजल का अनियंत्रित दोहन शहरों में व्यक्तिगत आराम के लिए किया जा रहा है, जो आम जनता पर भारी पड़ रहा है। आज भी जब देश का इतना बड़ा हिस्सा सूखे से तड़प रहा है तो महानगरों में पानी की भयंकर बर्बादी में कोई कमी नहीं आई है। राजधानी दिल्ली के अप्पूघर में 'वाटर पार्क' में रंगरेलियां मनाने नवधनाढ्यों के लड़के-लड़कियों की भीड़ जुटती है, टीवी पर 'वाटर किंगडम' और 'वाटर वर्ल्ड' के विज्ञापनों में कोई कमी नहीं आई है। गांवों में कुलक भारी पैमाने पर ट्यूबवेल लगा रहे हैं। हरियाणा और पंजाब के अमीर किसान रात भर ट्यूबवेल चला छोड़ देते हैं।

जल के इस दोहन के लिए आम गरीब मेहनतकश आबादी को किसी भी नजरिए से दोषी नहीं ठहराया जा सकता, यह सरासर अन्याय होगा। क्या एक गरीब किसान ट्यूबवेल लगा सकता है? क्या एक दिहाड़ी मजदूर उस तरह पानी खर्च कर सकता है जैसे एक धनी व्यक्ति खर्च कर सकता है? सरकार के मुनाफा कमाने के रुख ने सूखे जैसी समस्याओं से लड़ने की आम लोगों की क्षमता को बेहद घटा दिया है। उड़ीसा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक कहते हैं कि सूखे से निपटने के लिए ट्यूबवेल का इंतजाम किये जा रहे हैं (वाह! क्या समाधान ढूंढा है!) लेकिन जल-संग्रह की पारम्परिक पद्धतियों को प्रोत्साहित करने का किसी भी राज्य सरकार का कोई इरादा नहीं है जबकि इसके द्वारा समस्या से निपटा जा सकता है। विकास प्रक्रिया का लक्ष्य है पूंजी इकट्ठा करना और मुनाफा कमाना, जन-समस्याओं का निवारण तो दूर सरकारी विकास योजनाएं उनको और बढ़ा रही हैं।

पर्यावरणीय समस्याएं लगातार ऐसी आपदाओं को जन्म दे रही हैं। मुनाफे की हवस के चलते लगातार पेड़ काटे जा रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन पूंजीवाद की प्रकृति है। पेड़ों की भयंकर कटाई भी बाढ़ और सूखा दोनों को जन्म दे रही है। पेड़ों के कटने से पानी बिना रुके नदी में जा मिलता है। इस पानी के साथ भारी मात्रा में गाद आता है और नदियों की तली में बैठ जाता है। इससे नदियों का स्तर तेजी से बढ़ता है जो बाढ़ का कारण बनता है। सूखा भी पेड़ों के कटने का कारण होता है। पेड़ों के कटने से पानी रुकता नहीं है और बहकर नदियों में चला जाता है, अगर पेड़ रहें तो पानी ढलानों पर रुकता है और रिसकर जमीन के अन्दर चला जाता है और भूजल सम्पदा के स्रोत का काम करता है। लेकिन पूंजीवादी हवस ऐसा होने नहीं देती।

सबसे बड़ी बात यह है कि भारत की तीन चौथाई आबादी भूजल पर निर्भर करती है, जिसका स्रोत लगातार घटता जा रहा है, और जितना बच भी रहा है उसे धनिक वर्ग मशीनों के जरिये खींच ले जा रहा है। यह सरकार इन्हीं धनिकों की मैनेजिंग कमेटी है। तो यह स्वाभाविक ही है कि सरकार न तो जंगलों की अंधाधुंध कटाई पर रोक लगायेगी, न ही जल-संचय की कोई व्यवस्था करेगी, क्योंकि यह सब मुनाफा कमाने में बाधक बनेंगे।

अपवादस्वरूप कुछ छिटपुट उदाहरण सामने आते हैं जिससे जनता की शक्ति और क्षमता का पता लगता है। कुछ गांवों-कस्बों में जनता अपनी पहल पर कोई योजना लेकर समस्याओं के समाधान करने लगती है। कहीं कोई अन्ना हजारे, राजेन्द्र सिंह और मोहन राव पैदा हो जाते हैं और कुछ सुधार कर दिखाते हैं। उनके प्रयोग यही साबित करते हैं कि अनाप-शनाप खर्च किये बिना और करोड़ों आबादी को उजाड़े बिना भी पानी की समस्या का समाधान किया जा सकता है। लेकिन इस व्यवस्था में ऐसे चंद प्रयोग छोटे-छोटे इलाकों में सिमटकर ही रह सकते हैं। सवाल दो-चार गांवों का नहीं देश के हजारों गांवों-कस्बों का है।

मौजूदा मुनाफे पर टिकी पूंजीवादी व्यवस्था में इन समस्याओं का कोई स्थाई समाधान सम्भव नहीं है। पूंजीवादी सरकारों की दिलचस्पी सिर्फ और सिर्फ इस बात में होती है कि पूंजीपतियों के लिए ज्यादा से ज्यादा सुविधाजनक स्थितियां कैसे पैदा की जायें जिसमें वे मेहनतकशों के खून की कीमत पर मुनाफा कमा सकें। यह समस्याएं सिर्फ एक ऐसी व्यवस्था में हल की जा सकती है जिसमें उत्पादन के साधनों, उत्पादन, राज-काज और समाज के ढांचे पर आम मेहनतकश जनता का हक हो।

• अभिनव सिन्हा

## मजदूरों के खिलाफ आक्रामक तेवर

(पेज 1 से आगे)

तक प्रतिवर्ष यह वृद्धि 2.48 फीसदी की थी। 1983-84 से 1987-88 के बीच यह गिरकर 1.38 फीसद रह गई। 1987-88 से 1993-94 के बीच यह मात्र 1.05 फीसदी रह गई। इसके बाद तो इसमें और गिरावट ही आई है। दिहाड़ी मजदूरों में बेरोजगारी का आंकड़ा और भी तेजी से बढ़ रहा है। ग्रामीण मजदूरों में यह आंकड़ा 4.58 से बढ़कर 5.64 तक पहुंचा है। गांवों से उजड़कर शहरों के आसपास के औद्योगिक केन्द्रों में जुटने वाले मजदूरों की आबादी लगातार बढ़ती जा रही है जिसका नतीजा है कि बेकारों की विशाल फौज का फायदा उठाकर उद्योगपति उन्हें मनमाने तरीके से लूट रहे हैं। हालत यह है कि दिल्ली के आसपास फैले विशाल औद्योगिक क्षेत्रों में, जहां लगभग 35 से 40 लाख मजदूर काम करते हैं, आज से तीन वर्ष पहले दिहाड़ी लगभग 60 रुपये मिलती थी। पर आज बमुश्किल 40 से 50 रुपये ही मिल पाते हैं। इस पर भी रोज सुबह कारखानों के गेटों पर मजदूरों की भीड़ जुटती है और ठेकेदार जरूरत भर मजदूरों को लेने के बाद बाकियों को धक्के दे-देकर खदेड़ते हैं। ऐसी स्थितियां सिर्फ छोटे और असंगठित उद्योगों में ही नहीं हैं बल्कि देशी इजारेदार घराने और तमाम बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भी इसमें पीछे नहीं हैं। किसी तरह के श्रम कानूनों का कोई मतलब नहीं रह गया है।

मालिकों के अत्याचार से बचने के लिए मजदूर जिन संस्थाओं की ओर देखते थे—यानी (चुनावबाज पार्टियों से जुड़ी) राष्ट्रीय यूनियनें, अदालत और सरकार (और विपक्ष)—सब आज मालिकों के साथ खड़े हैं। इसी लिए मालिक और उनके कुत्ते इतने हमलावर हैं।

मजदूर का साथ आज सिर्फ उसके सच्चे साथी—तमाम मेहनतकश वर्ग और इस लुटेरी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए लड़ रही ताकतें ही दे सकते हैं। किसी और से मदद की कोई उम्मीद नहीं रह गई है। इस नर्क से बाहर निकलने का कोई और रास्ता नहीं बचा है। मजदूरों को आपस के सभी बंटवारे भुलाकर मजबूत एकता कायम करनी होगी, समाज के दूसरे मेहनतकश और वंचित तबकों के साथ जुड़ना होगा तथा जुर्म और जुल्म की बुनियाद पर खड़ी इस व्यवस्था को जड़ से मिटाकर अपना राज कायम करने की राह पर बढ़ने की तैयारी करनी होगी। •

## 'भारत का मानचेस्टर' अहमदाबाद अब कपड़ा मिलों के कब्रगाह में तब्दील

ऐसा सिर्फ पूंजीवाद में ही हो सकता है कि देश की आधी से ज्यादा आबादी को पहनने के लिए कपड़े न हों लेकिन देश की कपड़ा मिलें लगातार बंद होती जा रही हों। सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश में प्रति व्यक्ति कपड़े की औसत उपलब्धता सिर्फ दो मीटर है लेकिन कानपुर, बम्बई और अहमदाबाद जैसे टेक्सटाइल मिलों के बड़े केन्द्रों की 80 प्रतिशत से ज्यादा मिलें बंद हो चुकी हैं। फल-फूल रही हैं तो सिर्फ महंगे सूटिंग-शर्टिंग बनाने वाली मिलें क्योंकि उनके कपड़े खरीदने वाले लोगों के पास इतना धन है कि वे चाहें तो गरीबों की चमड़ी भी उतार कर सूट सिला लें।

अहमदाबाद एक समय "भारत का मानचेस्टर' के नाम से विख्यात था। लेकिन गुजरात का यह शहर अब कपड़ा मिलों के कब्रगाह में तब्दील हो गया है। यहां की 82 कपड़ा मिलों में से मौजूदा समय में सिर्फ 12 चालू हैं। दर्जनों कपड़ा मिलों के बंद होने से एक लाख से भी अधिक मजदूर बेरोजगार हो गये हैं। 1970 के दशक के शुरुआती वर्षों की तुलना में उत्पादन का नुकसान हर साल 25 अरब रुपये से भी अधिक होने का अनुमान है। कपड़ा मिलों का आधुनिकीकरण नहीं होने, प्रतिद्वंद्विता बढ़ने और सरकार की नीतियों की वजह से कपड़ा उद्योग की यह भयावह स्थिति हुई है। कपड़ा मिलों के मजदूरों के सबसे बड़े और पुराने संगठनों में से एक 'मजूर महाजन' के नेता नवीन चन्द्र बड़ोत ने बताया कि बीमार कपड़ा मिलों को पुनर्जीवित करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा किये गये प्रयास बुरी तरह नाकाम रहे हैं। मजूर महाजन की सदस्य संख्या एक समय एक लाख से भी अधिक थी जो मौजूदा समय में गिरकर सिर्फ 16 हजार रह गई है।

इसकी सीधी वजह यह है कि सूती कपड़े गरीब जनता खरीदती है जिसकी क्रयशक्ति दिनोंदिन घटती जा रही है। इसलिए पूंजीपति अपना पैसा निकालकर इलेक्ट्रानिक्स और कम्प्यूटर जैसे ज्यादा मुनाफे वाले उद्योगों में लगाना चाहते हैं और मिलों की जमीनें बेचकर तुरंत पैसा पैदा करना चाहते हैं।

जिस व्यवस्था में इंसानों की बुनियादी जरूरतों के बजाय मुट्ठीभर धनपशुओं के मुनाफे का महत्व व कीमत ज्यादा हो उसे चलते रहने की इजाजत देना इंसानियत के प्रति अपराध है।

• सुनील चौधरी

# आपके अधिकार क्या हैं?

**यह पर्चा 'वर्कर्स सौलिडेरिटी' नाम के दिल्ली के प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के एक ग्रुप की ओर से निकाला गया है जो मजदूरों को सचेत और संगठित बनाने के काम में लगा हुआ है।**

**मजदूरों को इस लुटेरी व्यवस्था से लड़कर हासिल किये गये न्यूनतम कानूनी अधिकारों की जानकारी होनी ही चाहिए और इनके लिए कदम-कदम पर उन्हें लड़ना चाहिए। लेकिन साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज सारे लुटेरे मिलकर जिस तरह से मजदूरों पर टूट पड़े हैं और सरकार, अदालत, प्रशासन सब मालिकों के साथ खड़े हैं तो ऐसे में ये अधिकार भी अपनी जुझारू एकता के दम पर ही लिये जा सकते हैं। आज हालत यह है कि दिल्ली और आसपास जहां तीन साल पहले दिहाड़ी 60 रुपए मिलती थी आज 40 से 50 रुपए पर आ गई है।**

**न्यूनतम कानूनी अधिकारों के लिए संघर्ष आज जिन्दा रहने का संघर्ष बन गया है। इस अस्तित्व की लड़ाई को लड़ते हुए हमें अपनी एकजुटता, अपनी ताकत और अपनी समझदारी को बढ़ाते रहना होगा ताकि एक दिन हम इस लुटेरी व्यवस्था को ही खत्म करके मेहनत करने वालों का राज कायम करने की लड़ाई में उतर सकें।**

●

कानून ने कामगारों को बहुत कम अधिकार दिए हैं। जो भी हक मिला है, वह दुनिया भर में मजदूरों के संघर्ष से, और संगठित होने से मिला है। लेकिन इन चन्द कानूनों को भी, पूंजीपतियों की सेवा में लगी सरकार लागू नहीं करवा पाती। दिल्ली के तमाम कारखाने, दुकाने, होटल, प्राईवेट हस्पताल व आफिस इन श्रम कानूनों का माखौल उड़ाकर मजदूरों का शोषण कर रहे हैं।

कानून की किताबों में से इन अधिकारों को उठाकर अपने काम करने की जगह के भीतर ले जाने के लिए संघर्ष जरूरी है। और संघर्ष के लिए इन अधिकारों को जानना भी जरूरी है। ये बुनियादी अधिकार इस प्रकार हैं :

इन अधिकारों पर चर्चा करने से पहले कुछ महत्वपूर्ण बातें दिमाग में रखनी जरूरी है :

1. कानून ने ये बुनियादी अधिकार सभी कामगारों को दिए हैं। याद रखिए ये हक उन कामगारों के भी हैं जिन्हें अस्थायी या फिर ठेके (कांट्रेक्ट) पर रखा गया है। ठेके पर पीस रेट के हिसाब से काम कर रहे मजदूरों को भी ये हक हासिल हैं।

2. यदि ठेकेदार या सब-कांट्रैक्टर कंपनी इनमें से किसी भी कानून की अनदेखी करती है तो वर्कर को उससे पहुंचे नुकसान की भरपाई असली मालिक (प्रिंसिपल एम्प्लायर) को करनी होगी।

3. उत्पादन (प्रोडक्शन) के काम में लगी ऐसी फैक्ट्री जहां 10 या उससे अधिक वर्कर कार्यरत हों, वहां 'फैक्ट्री एक्ट' लागू होगा। बाकी सब जगहें और वहां काम कर रहे वर्कर 'शाप्स एण्ड एस्टेबलिशमेण्ट एक्ट' के तहत आयेंगे।

**1.2.99 से लागू न्यूनतम मजदूरी**

| काम | अकुशल | | अर्द्धकुशल | | कुशल | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | मासिक | दैनिक | मासिक | दैनिक | मासिक | दैनिक |
| 1. रेडीमेड गारमेंट व टेक्सटाइल | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 2. प्राइवेट अस्पताल व नर्सिंग होम | 2348 | 90.30 | 2608 | 100.30 | 2962 | 113.90 |
| 3. धातु के काम में लगे कारखाने | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 4. आटोमोबाइल इंजीनियरिंग, सर्विस व रिपेयर | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 5. प्लास्टिक, रबड़ व केबल का काम | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 6. प्रिंटिंग प्रेस | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 7. इलेक्ट्रानिक्स व मैकेनिकल वर्क | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 8. कैमिकल, पेंट, साबुन, सिलिकेट व दवाइयां | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |
| 9. सभी दुकानें, आफिस व कामर्शियल एस्टेबलिशमेंट | 2348 | 90.30 | 2514 | 96.70 | 2772 | 106.60 |

नोट :

1. दिल्ली में काम की किसी भी जगह पर कानूनन 2,348 रु. (अकुशल), 2,514 रु. (अर्धकुशल) व 2,772 रु.. (कुशल) से कम न्यूनतम मजदूरी नहीं हो सकती।
2. इन कारखानों, दुकानों व व्यवसायिक संसथानों में क्लर्क, व आफिस स्टाफ का काम कर रहे कर्मचारियों के लिए भी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय की गयी है जिसको आप न्यूनतम मजदूरी एक्ट में देख सकते हैं।

## न्यूनतम मजदूरी

न्यूनतम मजदूरी सरकार द्वारा तय की गयी वह मजदूरी है जो किसी भी वर्कर को हर हाल में मिलनी ही चाहिए। यदि किसी मालिक ने केवल एक व्यक्ति को भी काम पर रखा हुआ है तो भी उसे यह न्यूनतम मजदूरी देनी पड़ेगी। मालिक अथवा मैनेजमेण्ट द्वारा न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी पर काम करवाना पूरी तरह से गैरकानूनी है।

न्यूनतम मजदूरी के दो हिस्से हैं— बेसिक और डी.ए. (महंगाई भत्ता)। दोनों को जोड़कर ही न्यूनतम मजदूरी बनती है। डी.ए. का रेट समय-समय पर बदलता रहता है। दिल्ली में 1 फरवरी, 1999 से अलग अलग उद्योगों में लागू न्यूनतम मजदूरी की लिस्ट आगे दी गयी है। इस लिसट को देखकर हिसाब लगाएं कि क्या आप के काम करने की जगह पर न्यूनतम मजदूरी दी जा रही है। दिल्ली में अधिकतर मालिक न्यूनतम मजदूरी अदा नहीं कर रहे। और थोड़े बहुत कारखानों में जहां न्यूनतम मजदूरी मिल भी रही है वहां कुशलता के मुताबिक नहीं मिल रही। यानि कुशल वर्कर को अकुशल श्रेणी की मजदूरी मिल रही है। इसलिए लिस्ट देखते समय यह भी ध्यान रखें आप का काम कुशलता की किस श्रेणी में आता है।

## ओवरटाइम भत्ता

फैक्ट्री एक्ट तथा शाप्स एण्ड एस्टेबलिशमेंट एक्ट, दोनों ही कानूनों के मुताबिक रोजाना काम के 8 घण्ट तय किये गये हैं। यानि हफ्ते में कुल 48 घण्टे। यदि मालिक इससे अधिक काम लेता है तो उसे प्रत्येक अतिरिक्त घण्टे के लिए दोगुनी मजदूरी देनी पड़ेगी। मतलब बेसिक व डी.ए. मिलाकर एक घण्टे की जितनी मजदूरी बनती है, ओवरटाईम की उससे डबल पेमेंट होनी चाहिए। पीस रेट पर काम करने वाले वर्कर को भी, पीसरेट पर जो औसत दैनिक मजदूरी बनती है उसके दोगुने के हिसाब से प्रति घण्टा ओवरटाइम मिलना चाहिए।

इसके अलावा किसी भी वर्कर से लगातार, जबरन ओवरटाइम नहीं करवाया जा सकता। जबकि हकीकत यह है कि दिल्ली की हजारों फैक्टरियों में मजदूरों से रोजाना 12 घण्टे काम लिया जा रहा है और उन्हें काम के 4 अतिरिक्त घण्टों की पेमेंट या तो कुछ नहीं या फिर केवल उनकी दैनिक मजदूरी के रेट पर की जा रही है।

## साप्ताहिक छुट्टी

फैक्ट्री एक्ट व शाप्स एण्ड एस्टेबलिशमेण्ट एक्ट, दोनों ही कानूनों के मुताबिक सभी कर्मचारियों को हफ्ते में एक दिन की छुट्टी मिलनी चाहिए। जबकि हकीकत में ठेका व अस्थायी मजदूरों से पूरे 7 दिन काम कराया जाता है और सातवें दिन की या तो उन्हें कुछ पेमेंट नहीं मिलती या फिर सिर्फ दैनिक मजदूरी मिलती है। जबकि असल में उन्हें इसका डबल ओवरटाइम मिलना चाहिए। याद रखिए कि कानून ने जो मासिक न्यूनतम मजदूरी तय की है वह 26 दिन के काम की है।

## सालाना छुट्टी

फैक्ट्री एक्ट के तहत आने वाले हर कामगार को पिछले साल में किये गये हर 20 दिन के काम के बदले में, इस साल एक दिन की छुट्टी के हिसाब से पेड सालाना छुट्टी (पी.एल.) मिलनी चाहिए बशर्ते कि उसने पिछले साल में कुल 240 दिन उस फैक्ट्री में काम किया हो। शाप्स एण्ड एस्टेबलिशमेंट एक्ट के तहत आने वाले कामगारों को साल में 15 पेड छुट्टियां (पी.एल.) मिलनी चाहिए बशर्ते कि उस वर्कर ने एक साल उस जगह पर काम किया हो। इन 15 छुट्टियों के अलावा उसे हर एक महीने के काम के बदले में एक कैजुअल छुट्टी भी मिलनी चाहिए।

## प्रोविडेंट फंड (पी.एफ.)

प्रोविडेंट फंड ऐसी हर फैक्ट्री, दुकान, आफिस या अन्य एस्टेबलिशमेंट पर लागू होता है जहां स्टाफ को मिलाकर कम से कम 20 वर्कर काम पर हों। वेतन का (डी.ए. मिलाकर) 12 प्रतिशत वर्कर की ओर से और 12 प्रतिशत ही मालिक की ओर से ही हर महीने प्रोविडेंट फंड में जमा होना चाहिए। जमा हो चुके पी.एफ. का हिसाब पी.एफ. आफिस को हर साल वर्कर को भेजना चाहिए। जबकि हो यह रहा है कि बड़े-बड़े कारखानों तक की मैनेजमेंटें वर्कर के वेतन में से पी.एफ. काट तो रही हैं लेकिन उसे पी. एफ. आफिस में जमा नहीं करवा रहीं। यह खुली डकैती है।

## ई. एस. आई.

फैक्ट्री एक्ट के तहत आने वाला कोई भी वर्कर मैनेजमेंट से ई.एस.आई. योजना की मांग कर सकता है।

शाप्स एण्ड एस्टेबलिशमेंट एक्ट के तहत आने वाले कर्मचारियों के लिए यह योजना तब लागू होगी जब कम से कम 20 वर्कर काम पर हों। इसके तहत मैनेज-मेंट वर्कर के मासिक वेतन से 1.75 प्रतिशत काटकर, और वेतन का 4.75 प्रतिशत अपनी तरफ से डालकर ई.एस. आई. कार्पोरेशन में जमा करायेगी। मालिक के लिए प्रत्येक वर्कर को ई.एस.आई. कार्ड देना कानूनी रूप से जरूरी है।

●

कानून से मिले ये हक पूरी तरह से नाकाफी हैं। जैसे सरकार द्वारा तय की गयी न्यूनतम मजदूरी से किसी भी परिवार का गुजारा नहीं चल सकता। और सरकार समय-समय पर जो डी.ए. बढ़ाती है, मंहगाई उतने समय में डी.ए. की किश्त से कहीं अधिक बढ़ चुकी होती है।

लेकिन ये थोड़े से कानूनी हक भी अधिकतर जगहों पर लागू नहीं हैं। और सरकार अब लोकसभा में बिल पास करवाकर मजदूर वर्ग को मिले इन चन्द अधिकारों को भी छीनने की कोशिश में लगी है।

इन बुरे हालात में मजदूरों की चिन्ता किसी तरह अपनी नौकरी बचाए रखना है। नौकरी छिन जाने के डर से वर्कर, मालिक द्वारा किये जा रहे शोषण को चुपचाप सहने पर मजबूर हैं। लेकिन एक बात साफ है यदि हम चुप रहे तो जो औद्योगिक और राजनैतिक माहौल बन रहा है उसमें, आने वाले वक्त में यह कानूनी हक बचेंगे ही नहीं। अपने इन अधिकारों को बचाने, लागू करवाने और बढ़ाने का रास्ता हमें खोजना ही होगा।

—इस परचे में दिये अधिकारों के बारे में अपनी काम की जगह पर दूसरे वर्कर साथियों से चर्चा कीजिए।

—आपकी फैक्ट्री जैसा ही माल बना रही अन्य फैक्टरियों के मजदूर साथियों से बातचीत कीजिए।

—अपनी सामूहिक ताकत को पहचानिये।

—दलाल ट्रेड यूनियनों से बचते हुए, अपने संघर्ष की दिशा खुद तय कीजिए।

●

# बाल मजदूर...

(पेज 12 से आगे)

लिया जा सकता है।

स्वयंसेवी संस्थाएं, अंतरराष्ट्रीय संगठन और 'बचपन बचाओ आंदोलन' जैसे मुहिम के कर्ताधर्ता प्राय: जब बाल मजदूरी के खिलाफ आवाज उठाते हैं तो वे गरीबों को ही यह उपदेश पिलाते हैं कि वे अपने बच्चों का बचपन उन्हें काम पर भेजकर तबाह करने की जगह उन्हें पाठशालाओं में पढ़ने के लिए भेजें। दूरदर्शन पर सरकार भी यही प्रचार दिखाती है कि बच्चों के हाथ में काम के औजार नहीं खिलौने और किताबें होनी चाहिए। 'चाइल्ड लेबर ऐक्शन नेटवर्क' जैसी स्वयंसेवी संस्थाएं और यूनीसेफ एवं यूनेस्को जैसी संयुक्त राष्ट्रसंघ की एजेंसियां भी गरीब अभिभावकों को ही झाड़ पिलाती नजर आती हैं कि वे शिक्षा का महत्व नहीं समझ पाने के कारण अपने बच्चों को काम पर लगा देते हैं।

एक गरीब मां-बाप अपने बच्चे से मजदूरी इसलिए नहीं करवाते कि वे उन्हें प्यार नहीं करते या कि वे कामचोर होते हैं। वे उन्हें इसलिए गुलामी के उस भयंकर नर्क में भेजते हैं कि वे खुद उनका पेट नहीं भर सकते और भूख की जलती आग में झुलसकर मरने देने के बजाय वे अपने बच्चों के जिन्दा रहने के अकेले विकल्प को चुनना पसंद करते हैं। बहुसंख्यक गरीब मां-बाप यदि खुद काम नहीं करते और अपने बच्चों की कमाई खाते हैं तो यह उनकी विवशता है न कि स्वार्थ या शौक। यदि कुछ एक गरीब मां-बाप ऐसे हैं भी, तो भी इसके दोषी वे खुद नहीं, यह सामाजिक व्यवस्था है जिसने निराशा की अंधेरी खाइयों में धकेलकर उनका इस कदर अमानवीकरण कर डाला है।

ऐसे ''बचपन बचाने'' वालों से हमारा यह सवाल है कि उनके अभियानों से क्या इस देश के करोड़ों मजदूर और बंधुआ बच्चों की जिन्दगी मुक्त हो सकती है? यदि सभी मजदूर बच्चों को ऐसे अभियानों के द्वारा एकबारगी मुक्ति मिल भी जाये तो खुली बाजार अर्थव्यवस्था और आर्थिक नवउपनिवेशवादी नीतियां क्या उनकी जगह भरने के लिए बेघर-बेबस लोगों के उतने ही बच्चों को नहीं ला खड़ा करेंगी? क्या महज कुछ कारखानों-खदानों- भट्ठों से बाल मजदूरों को मुक्त कराते रहने से बाल मजदूरी के काले कलंक से मानवता मुक्त हो सकेगी? क्या इन नये मसीहाओं ने सोचा है कि लाखों बाल मजदूर भी यदि मुक्त हो जायें तो वे क्या खाएंगे, क्या पहनेंगे और किस विद्यालय में पढ़ेंगे? देर-सबेर वे उसी दुश्चक्र में जा फंसेंगे, क्योंकि तमाम स्वयंसेवी संस्थाओं के खैरात से उन सबकी परवरिश नहीं संभव होगी और उनके मां-बाप की यदि इतनी कूव्वत होती तो वे बाल मजदूरी करने को बाध्य ही नहीं होते। आखिर ये तमाम 'सान्ता क्लाज' बच्चों को बंधुआ बनाने वाली असली ताकतों की तरफ उंगली क्यों नहीं उठाते? बाल मजदूरों की मुक्ति के लिए प्रचार अभियान चलाने और यहां-वहां से कुछ दर्जन बच्चों को मुक्त कराकर अखबारी शोशा उछालने के अतिरिक्त अपनी ताकत का एक छोटा सा हिस्सा भी ये लोग साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध जनता को संगठित करने पर क्यों नहीं खर्च करते?

यह कोई मासूम या मूर्ख ही सोच सकता है कि जबतक बच्चों की जिन्दगी की बुनियादी जरूरतें पूरी नहीं होंगी, तबतक कानून बनाकर और उसे लागू करके (वैसे तो लागू ही नहीं हो सकता) बाल-मजदूरी रोकी जा सकेगी।

बाल मजदूरी के मुद्दे को पूरी आबादी के रोजगार और समान एवं सर्वसुलभ शिक्षा के मूलभूत अधिकार के लिए संघर्ष से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता । जो व्यवस्था सभी हाथों को काम देने के बजाय करोड़ों बेरोजगारों की विशाल फौज में हर रोज इजाफा कर रही है, जिस व्यवस्था में विकास का हर कदम रोजगार के अवसरों को कम करता है और समृद्धि के इर्द-गिर्द फैली दरिद्रता के सागर को और बढ़ा देता है, जो व्यवस्था शिक्षा को सभी नागरिकों के लिए सुलभ बनाने के बजाय खुली बाजार व्यवस्था में उसे मुट्ठी भर लोगों का विशेषाधिकार बना देती है, उसी व्यवस्था के भीतर से लगातार बाल-मजदूरों की अन्तहीन कतारें निकलती रहेंगी। उस व्यवस्था के अनैतिक-अनुचित उपस्थिति पर ही सवाल उठाये बिना बच्चों को बचाना संभव नहीं, बाल मजदूरों की मुक्ति संभव नहीं।

इसका यह मतलब नहीं है कि बाल मजदूरों को मुक्त कराने का, बाल मजदूरी विरोधी कानून को प्रभावी बनाने का आंदोलन चलाया ही नहीं जाये। अवश्य चलाया जाये, पर इसका परिप्रेक्ष्य यदि क्रांतिकारी नहीं होगा, यदि साम्राज्यवाद- पूंजीवाद विरोधी जनता के विभिन्न वर्गों और हिस्सों के संघर्षों से यह आंदोलन जुड़ा नहीं होगा और यदि यह एक समग्र क्रांतिकारी कार्यक्रम का अंग नहीं होगा तो यह महज एक सुधारवादी आंदोलन होगा जो दूरगामी तौर पर व्यवस्था की ही सेवा करेगा।

● नमिता

**रपट** मई दिवस के शहीदों को याद करो, संघर्ष की नई राह पर आगे बढ़ो!

# तराई क्षेत्र में मई दिवस पर मजदूर मेले का आयोजन

(बिगुल प्रतिनिधि)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। आज के कठिन चुनौतीपूर्ण समय में जब उदारीकरण-निजीकरण की मजदूर विरोधी नीतियों को लागू करने की गति काफी तेज हो गयी है और मजदूर आन्दोलन एक अन्धकार के दौर से गुजर रहा है तो **बिगुल मजदूर दस्ता और नारी सभा** की पहल पर तराई में मई दिवस के अवसर पर स्थानीय गांधी पार्क में दो दिवसीय मजदूर मेला का आयोजन किया गया। तराई क्षेत्र में पहली बार आयोजित यह मजदूर मेला मई दिवस की क्रान्तिकारी परम्परा को आगे बढ़ाने, अपनी जुझारू एकता कायम करने और अपने मुक्तिकामी संघर्षों के लिए एक बार फिर से संकल्प बांधने के लिए किया गया।

दो दिनों तक गहमा-गहमी से भरे इस मेले में क्षेत्र के तमाम कारखानों के मजदूरों ने पूरे परिवार के साथ जोशो खरोश से भाग लिया। जहां मजदूरों ने नाटकों की प्रस्तुति की वहीं महिलाओं ने पहल बार मंच पर आने का साहस किया और क्रान्तिकारी गीत गाए। बच्चों की खेल-कूद प्रतियोगिताएं आयोजित हुईं और उनके द्वारा भी नाटक और समूह गान प्रस्तुत हुए। मेले में मई दिवस, आज के हालात और मजदूर आन्दोजन से सम्बन्धित पोस्टर व पुस्तक प्रदर्शनी लगायी गयी तथा क्रान्तिकारी फिल्मों का प्रदर्शन हुआ। दूसरे दिन हुई आम सभा में क्षेत्र के विभिन्न श्रमिक संगठनों द्वारा श्रम कानूनों में हो रहे संशोधनों, निजीकरण-छंटनी-तालाबन्दी जैसी मजदूर विरोधी नीतियों, बढ़ रहे ठेकेदारी प्रथा और दमन-उत्पीड़न व जन विरोधी काले कानूनों आदि के खिलाफ प्रस्ताव भी पारित हुए।

मेले के दौरान पहले दिन (30 अप्रैल) आयोजित सांस्कृतिक संध्या की शुरुआत बच्चों के समूह गानों और बाल कलाकारों द्वारा वर्तमान व्यवस्था पर केन्द्रित व्यंग्य नाटक 'तमाशा' से हुई जिसे उपस्थित लोगों ने काफी सराहा। इसके बाद अपनी झिझक को तोड़ते हुए 'नारी सभा' की टोली ने दो क्रान्तिकारी गीत गाए। 'बिगुल मजदूर दस्ता' की टोली ने 'हवाई गोले' नाटक के माध्यम से संसदीय सुअरबाड़े का दृश्य उपस्थित किया।

इस सांस्कृतिक आयोजन की सबसे महत्वपूर्ण प्रस्तुति थी 'मई दिवस' नामक नाटक का मंचन। इस नाटक के माध्यम से 14-14, 18-18 घण्टे काम के दौर से आठ घण्टे काम की मांग, मई दिवस का आंदोलन, हे मार्केट की घटना, लाल झण्डे की उत्पत्ति, चार मजदूर नेताओं को फांसी, दुनिया में चलने वाले संघर्षों और उनके विविध पड़ावों से लेकर मजदूर विरोधी नीतियों को लागू होने के वर्तमान दौर और इसे बदलने के संकल्प का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया।

1 मई को आयोजित आम सभा में वक्ताओं ने कहा कि मई दिवस के अवसर पर एक बार फिर क्रान्तिकारी वीर शहीदों की कुर्बानियों से हमें प्रेरणा लेनी होगी। अपनी संग्रामी एकजुटता कायम करनी होगी और अपने-अपने कारखानों और विभागों के स्तर पर छोटे-बड़े संघर्षों में लड़ते हुए अपनी वास्तविक, सच्ची संपूर्ण आजादी के लिए, साम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद के नागपाश से मुक्ति के संघर्षों की तैयारी में जुट जाना होगा।

सभा को सम्बोधित करते हुए **श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन** के महामंत्री **बी.सी. पाण्डे** ने कहा कि मजदूरों को अपने अधिकारों के लिए तराई क्षेत्र में और पूरे देश के पैमाने पर संघर्षों को आगे बढ़ाना होगा। **विद्युत कर्मचारी संगठन** के क्षेत्रीय अध्यक्ष **डी.एस. नेगी** ने मजदूर आन्दोलन के हो रहे सरकारी दमन की निंदा करते हुए व्यापक मेहनतकश एकजुटता की अपील की।

**बिगुल मजजूर दस्ता** के **आर. सी. शर्मा** ने कहा कि अब वक्त आ गया है कि जब रियायतों और भीख पर जीना खत्म करना होगा तथा अपनी यूनियनों में फिर से क्रान्तिकारी धार पैदा करते हुए मजदूर वर्ग के शोषण विहीन समाज के पुराने सपने को जिन्दगी की हकीकत बनाने के लिए उठ खड़ा होना होगा।

**आनन्द निशिकावा श्रमिक संगठन** के अध्यक्ष **प्रयाग भट्ट** ने कहा कि अपनी आर्थिक मांगों और कारखाने स्तर की अन्य लड़ाइयों के साथ ही अपने राजनैतिक जनवादी अधिकारों के लिए लड़कर ही अपनी मुक्ति की लड़ाई को मजबूत बनाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि हर छोटी-बड़ी लड़ाई अपने आप में स्वतंत्र या मुकम्मिल नहीं होती बल्कि पूंजीवादी लूट तंत्र के खिलाफ बड़ी लड़ाई का ही एक अंग है।

**बीमा कर्मचारी संघ** के शाखा सचिव **रामपाल सिंह** ने ट्रेड यूनियन नौकरशाही को समाप्त करके उसके सच्चे जनतांत्रीकरण का आह्वान करते हुए कहा कि आम जनविरोधी आर्थिक नीतियों के खिलाफ संघर्षों के लिए मजदूर आन्दोलन का क्रान्तिकारीकरण करना ही होगा। **राज्य कर्मचारी संयुक्त परिषद** के अध्यक्ष **पी.सी. शर्मा** ने सरकारी कर्मचारी एवं प्राइवेट सैक्टर के मजदूरों के बीच विभेद करने की साजिशों से सावधान रहने को कहा।

हल्दूचौड़ से आये **जलपैक कर्मचारी संगठन** के अध्यक्ष **गोपाल सिंह** ने ट्रेड यूनियनों में समन्वय बनाने की आवश्यक्ता पर जोर दिया। **क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन** के **वेदव्यास मुनि तिवारी** ने कहा कि आजादी के पचास साल बाद भी 12-12 और 14-14 घंटे काम लिया जा रहा है। आज तकनीक जितनी उन्नत होती गयी है, पूंजीवादी लूट उतनी ही बारीक और तीखी होती गयी है।

सामाजिक कार्यकर्ता **मुकुल श्रीवास्तव** ने मजदूरों को पूरी तरह मालिकों का गुलाम बना देने वाले नये श्रम कानूनों की चर्चा करते हुए कहा कि 'हायर एण्ड फायर' यानि छांटो और भर्ती करो पर बने श्रम कानून लम्बे संघर्षों के दौरान अर्जित श्रमिकों के अधिकारों को भी खत्म कर देना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि 'अनुशासन हीनता और असन्तोषजनक काम' के आधार पर श्रमिकों की सेवा कभी भी समाप्त कर देने वाले नये श्रम कानूनों का सबसे खतरनाक पहलू है रोजगार सुरक्षा की गारण्टी माने जाने वाले औद्योगिक विवाद अधिनियमि 1947 के अध्याय 5बी को खत्म कर देना और चौतरफा ठेका प्रणाली लागू करना। उन्होंने कहा कि भूमण्डलीकरण के इस नये ऐतिहासिक दौर में आज सर्वहारा वर्ग को अपनी पिछली लड़ाई की उपलब्धियों और साथ ही भूलों-गलतियों से सबक निकालते हुए पूंजी के दुर्गों पर अन्तिम धावा बोलने की तैयारियों में जुट जाना होगा।

व्यापार कर के ट्रेडयूनियन कर्मी **जेड.एच. खान** ने बढ़ रहे साम्प्रदायिक खतरों से आगाह करते हुए मेहनतकशों को अपनी चट्टानी एकता मजबूत करने का आह्वान किया। अपने संचालकीय हस्तक्षेप के माध्यम से बीमा ट्रेडयूनियन कर्मी **ललित सती** ने ट्रेडयूनियन आंदोलन में नई क्रान्तिकारी शुरुआत पर जोर देते हुए मजदूर वर्ग की विचारधारा के प्रचार-प्रसार पर जोर दिया। सभा को **पर्वतीय कर्मचारी-शिक्षक संगठन** के जिला मंत्री **एस.के.नैयर, पी.डब्लू.डी.** के **घनश्याम कांडपाल** ने भी सम्बोधित किया।

इस पूरे आयोजन के समापन पर एक छोटी बच्ची पिंकी द्वारा प्रस्तुत इन्कलाबी गीत और मजदूरों के क्रान्तिकारी नारों से नये संघर्षों के लिए मजबूती प्रदान हुई। दो दिवसीय मजदूर मेला एक समतामूलक समाज की स्थापना—लोक स्वराज्य की स्थापना के संकल्प और इलाके के मजदूरों में नये उत्साह के संचार के साथ सम्पन्न हुआ।

## रुद्रपुर की आम सभा के माध्यम से श्रम विरोधी नीतियों के खिलाफ पारित प्रस्ताव

आज पूरे देश में मजदूर-कर्मचारी विरोधी नीतियां लागू हो रही है। उससे आम मेहनतकश अवाम की तबाही, बदहाली और बढ़ती जा रही है। मजदूरों-कर्मचारियों के दमन-उत्पीड़न का क्रम बदस्तूर जारी है। उनके हर प्रकार के न्यायसंगत आन्दोलनों को बेरहमी से कुचला जा रहा है। पहले से ही बेलगाम पुलिस महकमे को प्रस्तावित संशोधित टाडा कानून के माध्यम से और बेलगाम करने की तैयारी की जा चुकी है।

सरकार द्वारा "आर्थिक सुधारों" के दूसरे दौर में एक से बढ़कर एक मजदूर विरोधी, आम जनविरोधी कानून बनाये जा रहे हैं। पेटेंट कानूनों में बदलाव व बीमा एवं बैंकों के निजीकरण का रास्ता साफ करने के बाद अब श्रम कानूनों को देशी एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मनमाफिक बदलने की तैयारियां पूरी हो गयी है। मजदूरों को पूरी तरह मालिकों की मर्जी का गुलाम बना देने वाले प्रस्तावित नये श्रम कानून का कुल्हाड़ा अब सिर पर गिरने वाला है। इसका सबसे खतरनाक पहलू है "औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947" के अध्याय 5 बी को ही समाप्त करके रोजगार सुरक्षा का रहा सहा कानूनी हथियार भी पूरी तरह छीन लेना।

ऐसे हालात में, मई दिवस के अवसर पर आयोजित दो दिवसीय मजदूर मेला में आम सभा के माध्यम से ऊधमसिंह नगर के ट्रेड यूनियनों और विभिन्न श्रमिक संगठनों की ओर से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये जाते हैं :

1. प्रस्तावित मजदूर विरोधी श्रम कानून वापस लो।
2. प्रस्तावित संशोधित टाडा कानून को वापस लो और सभी काले कानूनों को रद्द करो।
3. मजदूरों-कर्मचारियों का दमन बंद करो।
4. सभी विभागों में बढ़ रही ठेकेदारी प्रथा को समाप्त करो।
5. निजीकरण, छंटनी, तालाबंदी, बंद करो।

**—हम हैं ऊधमसिंहनगर के ट्रेड यूनियन कर्मी एवं सामाजिक संगठन**

# मई दिवस पर लोकस्वराज पंचायत का आयोजन
# "सारी सत्ता मेहनतकश को!"

(बिगुल प्रतिनिधि)

मर्यादपुर, मऊ। अन्तरराष्ट्रीय मजदूर दिवस (मई दिवस) के अवसर पर **देहाती मजदूर किसान यूनियन** और **नारी सभा** ने संयुक्त रूप से इस क्षेत्र के लगभग दो दर्जन गांवों के मेहनतकश पुरुषों-स्त्रियों की लोक स्वराज्य पंचायत बुलायी, जुलूस निकाला, जनसभा और सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया। इन कार्यक्रमों के जरिए 1886 के मई आन्दोलन के दौरान शहीद हुए शिकागो के मजदूर नेताओं की शहादत को याद किया गया और पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण-उत्पीड़न से मुक्त एक नये समाज के लिए क्रान्तिकारी संघर्ष को तेज करने का संकल्प लिया गया।

मई दिवस के अवसर पर यूनियन के कार्यकर्ताओं के साइकिल जत्थे ने सुबह के समय गांव-गांव घूमकर मई दिवस के शहीदों का पैगाम पहुंचाया। इसके बाद दोपहर में ग्राम सभा ढिलई फिरोजपुर के बगीचे में गरीब मजदूर-किसान अपनी लोक स्वराज्य पंचायत के लिए जुटे। इसमें आधी संख्या महिलाओं की थी। पंचायत लगभग दो घण्टे तक चली। इसके बाद जुलूस की शक्ल में मर्यादपुर बाजार का एक चक्कर लगाते हुए सभी स्त्री-पुरुष बस स्टेशन के बीच बाग में सभास्थल पर पहुंचे जहां जनसभा और सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ।

जनसभा को संबोधित करते हुए देहाती मजदूर किसान यूनियन के संगठनकर्ता **अरविन्द सिंह** ने कहा कि जब तक देश में मेहनतकशों की अपनी सत्ता नहीं कायम होगी तब तक गरीबी-भुखमरी-बेकारी-भ्रष्टाचार से छुटकारा नहीं मिलेगा। उन्होंने देशी-विदेशी पूंजी की मौजूदा सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए क्रान्तिकारी संघर्ष के रास्ते पर चलने का आह्वान किया।

यूनियन के संयोजक **डा. दूधनाथ** ने मई दिवस के शानदार इतिहास की याद दिलाते हुए कहा कि शिकागो के शहीद मजदूर नेताओं **स्पाइस, फिशर, एंजेल्स और पार्सन्स** का सपना पूरा करने के लिए मेहनतकशों को चुनावी राजनीति के मायाजाल से बाहर आना होगा और एक नयी मजदूर क्रान्ति की अलख जगानी होगी।

सभा को सम्बोधित करते हुए **नारी सभा** की स्थानीय संयोजिका **राजुली देवी** ने मेहनतकश महिलाओं का आह्वान किया कि समाज में बराबरी कायम करने के लिए उन्हें वे घरों से बाहर निकलकर संघर्ष के मैदान में कूद पड़ें।

नारी सभा गोरखपुर की संयोजिका मीनाक्षी ने कहा कि दुनिया भर के पूंजीपति लुटेरे महिलाओं के सस्ते श्रम को लूटने के लिए तरह-तरह का जाल बट्टा रच रहे हैं। उन्होंने कहा कि समाज बदलने की हर लड़ाई में औरतें शामिल रही हैं और पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी क्रान्ति में भी महिलाएं पीछे नहीं हटेंगी। सभा का संचालन हरिहर यादव ने किया।

जनसभा के दौरान देहाती मजदूर-किसान यूनियन और नारी सभा की सांस्कृतिक टोली ने क्रान्तिकारी लोकगीत और बिरहा के द्वारा भी मई दिवस के शहीदों को श्रद्धांजलि दी और मजदूरों-किसानों की सच्ची आजादी के लिए क्रान्तिकारी लोकस्वराज्य के लिए संघर्ष करने का आह्वान किया।

सभा और जुलूस में शामिल लोग **'मई दिवस के शहीद अमर रहें', 'खत्म करो पूंजी का राज, लड़ो बनाओ लोक स्वराज', 'सारी सत्ता मेहनतकश को'** आदि नारे लगा रहे थे।

•

# मई दिवस को याद करेंगे, जुल्म नहीं बर्दाश्त करेंगे

(बिगुल प्रतिनिधि)

गजरौला (ज्योतिबा फुले नगर) 1 मई। ए.एस.पी. इम्प्लाइज यूनियन की पहल पर ए.एस.पी., सी.एन.सी., श्री एसिड व अन्य स्थानीय कारखानों के सैकड़ों मजदूरों ने ए.एस.पी. कारखाना गेट से संयुक्त जुलूस निकाला और चोपला चौराहे पर आम सभा की। सभा में मजदूरों-कर्मचारियों व विभिन्न क्रान्तिकारी संगठनों के प्रतिनिधियों ने मई दिवस के शहीदों को याद किया तथा मजदूरों के बढ़ते शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध और वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करने का संकल्प लिया।

सभा को सम्बोधित करते हुए **ए.एस.पी. इम्प्लाइज यूनियन** के अध्यक्ष **उदयपाल सिंह** ने मई दिवस के ऐतिहासिक महत्व को बताया और शासन की मजदूर विरोधी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए मजदूर वर्ग की आर्थिक लड़ाइयों के साथ-साथ राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने पर जोर दिया। जबकि यूनियन के महामंत्री **पी.सी. सती** ने कहा कि मजदूर अगर पूरे इलाके के पैमाने पर अपनी एकता नहीं बनायेंगे तो एक-एक कारखाने के मजदूर अकेले-अकेले लड़कर मालिकों के जुल्म का मुकाबला नहीं कर सकते।

**'बिगुल मजदूर दस्ता'** (दिल्ली) के **शिवरतन** ने प्रस्तावित मजदूर विरोधी नये श्रम कानून का खुलासा करते हुए कहा कि शासक वर्गों ने मजदूर आन्दोलन को वहां तक पीछे ढकेल दिया है जहां वह दीवार से पीठ लगाये खड़ा है। उन्होंने कहा कि मई दिवस के क्रान्तिकारी शहीदों की विरासत को आगे बढ़ाने का आज एकमात्र अर्थ यही है कि देश के मजदूर आन्दोलन को अर्थवाद-सुधारवाद के चंगुल से बाहर निकालकर नयी क्रान्तिकारी धार दी जाये।

**यू.पी. बैंक इम्लाइज यूनियन** के साथी ने वामपंथी संशोधनवाद का खुलासा करते हुए कहा कि संसदीय वामपंथी पार्टियां मजदूर वर्ग की पीठ में छुरा भोंककर पूंजीवादी व्यवस्था की चाकर बन चुकी हैं। उन्होंने सरकारी और निजी क्षेत्र के मजदूरों को एक मंच पर आने का आह्वान किया। **सीदू के सईद खान** ने मेहनतकश की व्यापक एकजुटता का आह्वान करते हुए एक गीत प्रस्तुत किया। **ए.एस.पी. के एल.एम. पंत** ने प्रबंधकों और अवसरवादी तत्वों द्वारा जातिवाद-क्षेत्रवाद फैलाने की साजिशों से सतर्क रहकर अपनी व्यापक एकजुटता कायम करने पर जोर दिया और औद्योगिक मजदूरों को स्थानीय संघर्षों से भी जुड़ने की जरूरत पर जोर दिया। क्षेत्र में फैल रहे औद्योगिक प्रदूषण पर रोष प्रकट करते हुए इसके खिलाफ संघर्ष को आगे बढ़ाने का आह्वान किया।

सभा को **भूपेन्द्र सिंह, के.के. जोशी** आदि ने भी सम्बोधित किया। सभा का संचालन सामाजिक कार्यकर्ता **पुखराज निराला** ने किया।

इससे पूर्व निकाले गये जुलूस में मजदूरों के नारों—'दुनिया के मजदूरो एक हो', 'मई दिवस को याद करेंगे, जुल्म नहीं बर्दाश्त करेंगे' 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो', 'खत्म करो पूंजी का राज, लड़ो बनाओ लोक स्वराज्य' आदि से शहर के रास्ते गूंज उठे। कार्यक्रम में मजदूरों द्वारा क्रान्तिकारी गीत भी प्रस्तुत किये गये।

आर.एन.आई. पंजीयन संख्या - 71980/99

## एक मजदूर साथी की मौत पर कुछ मजदूरों की भीड़ से उठे सवाल

# साथी मण्डल की मौत का जिम्मेदार कौन है?

नाम अभिलाष मण्डल, उम्र लगभग 27 वर्ष, पिक्चर ट्यूब बनाने वाले कारखाने रामाविजन लिमिटेड, किच्छा (ऊधम सिंह नगर) का एक आम मजदूर। अल्पायु में ही उसने इस दुनिया से अन्तिम विदा ले ली। मृत्यु सन्देहास्पद, किन्तु बगैर पोस्टमार्टम के उसकी अन्तिम क्रिया भी हो गयी। सब कुछ खामोश हो गया। लेकिन एक कौंधता हुआ प्रश्न जीवित रह गया—मण्डल की मौत का जिम्मेदार कौन है?

अभिलाष मण्डल अपने घर (प. बंगाल) से काफी दूर यहां विगत आठ वर्षों से रामाविजन में बतौर मजदूर काम कर रहा था, अकेले रहता था और कारखाने के प्रबन्धकों के जालिमाना तौर-तरीकों को झेलता रहा था। मजदूरों ने जब-जब यहां संघर्ष की आवाज उठायी, उसने मजबूती से साथ दिया। पिछले आन्दोलन के बाद कारखाने में जो दमनचक्र चला था, मण्डल भी अन्य मजदूरों के साथ उसका शिकार बना था, लेकिन अपनी मजबूती में उसने कमी नहीं आने दी थी।

मण्डल पिछले कुछ महीनों से बीमार चल रहा था और लगभग डेढ़ माह से छुट्टी पर था। दवा-इलाज के भारी खर्च और छुट्टियों में वेतन कटौती से उसकी अर्थव्यवस्था चरमरा गयी थी और शरीर भी जर्जर हो चुका था। वैसे भी इस कारखाने में 12-12 घण्टे की हाड़तोड़ मेहनत के एवज में मिलने वाले 18-19 सौ रुपये मासिक वेतन से मजदूरों का गुजारा ही बड़ी मुश्किल से हो पाता है। संगी-साथी बताते हैं कि मण्डल की इस वक्त फाकामस्ती चल रही थी। वह कर्ज से लदा हुआ था और कभी-कभी बगैर कुछ खाये ही सोना पड़ता था।

डेढ़ माह के बाद विगत 8 मई को मण्डल जब कारखाने में काम करने पहुंचा तो प्रबन्धकों ने उसे ड्यूटी पर लेने से इंकार कर दिया। इससे मण्डल की निराशा-हताशा और बढ़ गयी। पूरे दिन वह बेचैन रहा। रात में क्या हुआ, यह किसी को नहीं पता। सुबह बिस्तरे पर उसकी लाश पड़ी थी। सिरहाने पर ग्लास और दवा की शीशियां पड़ी थीं। बाल्टी देखने से साफ लगता था कि उसने उल्टियां की हैं। हालात यही बयान करते हैं कि उसने आत्महत्या की। लेकिन, प्रबंधतंत्र और पुलिस महकमे ने इसे 'लम्बी बीमारी से सामान्य मौत' की संज्ञा देकर उसका दाह संस्कार करवा दिया। पोस्टमार्टम और जांच आदि की प्रक्रिया ही नहीं होने पायी।

उधर जैसे-जैसे मण्डल की मौत की खबर फैलती गयी, मजदूर साथी हतप्रभ और अवसादग्रस्त होते चले गये। कारखाने के भीतर कार्यरत मजदूरों को तो जैसे करंट मार गया हो। वे जल्द से जल्द अपने इस मजदूर साथी के अन्तिम दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे। लेकिन प्रबन्धकों ने किसी को भी कारखाने से बाहर जाने ही नहीं दिया। गुस्से और क्षोभ और दुखी मन से मजदूर अपने कामों में लगे रहे। दोपहर में प्रबन्धतंत्र ने एक शोक सभा की और घड़ियाली आंसू बहाते हुए कहा कि जिनकी शिफ्ट दो बजे छूटती है वे उसकी अन्तिम क्रिया में शामिल हो सकते हैं। खुद मण्डल के विभाग के मजदूरों को एक घण्टे की भी अतिरिक्त छुट्टी नहीं दी गयी।

बहरहाल, मण्डल ने चाहे आत्महत्या की हो अथवा वह बीमारी या मानसिक तनाव में मौत की नींद सो गया हो, उसकी मौत 'सामान्य मौत' तो कदापि नहीं थी। 27 साल की अल्पायु में ही वह इस हत्यारी व्यवस्था के खूनी पंजों का शिकार हो गया। मण्डल की मौत रामाविजन कारखाने की दयनीय, दमनकारी और अमानवीय परिस्थितियों की जिन्दा मिसाल है।

यह वही कारखाना है जहां के मजदूरों के न्यायपूर्ण संघर्षों पर प्रबन्धकों के दमनात्मक ताण्डव को क्षेत्र की जनता अभी भी भूल नहीं सकी है। जहां मामूली दिहाड़ी पर 12-12 घण्टे हाड़तोड़ मेहनत करवाने, सभी श्रम कानूनों को ताक पर रख देने और यूनियन बनने के सभी प्रयासों को कुचलने में प्रबन्धकों की कुख्याति रही है। यह भी तथ्य गौरतलब है कि विगत एक वर्ष के दौरान लगभग 70 नियमित श्रमिक इस कारखाने को छोड़ कर जा चुके हैं और कई जाने की तैयारी में हैं।

बहरहाल, अभिलाष मण्डल अब हमारे बीच नहीं है। लेकिन इस जालिम व्यवस्था की त्रासदियों का बयान करने के लिए आज भी वह जीवित है। यहीं यह भी अहम सवाल है कि अपने कष्टों से मुक्ति के लिए खुद को मौत के हवाले करने से बेहतर क्या यह नहीं होगा कि इस अमानवीय व्यवस्था के ही अन्तिम क्रियाकर्म की तैयारी की जाये? आखिर कब तक हम तिल-तिल कर जीते और मरते रहेंगे?

• बिगुल संवाददाता

## आनन्द निशिकावा और ए.एस.पी. के मजदूरों मांगपत्र सौंपा

(पेज 1 से आगे)

जरूरी है। पहले ए.एल.पी./ए.एस.पी. एक बड़ा कारखाना था। मालिकों ने आपसी बंटवारे के माध्यम से (जाहिरा तौर पर संगठित मजदूरों की ताकत को दो हिस्से में बांटने के लिए) ए.एल.पी. व ए.एस.पी. नाम से दो कारखानों में तब्दील करके यहां के मजदूरों को दो भागों में बांट दिया। इधर ए.एस.पी. के प्रबन्धतंत्र ने घाटे का रोना रोते हुए मजदूरों को बहकावे में रखकर एक दिन रातोरात कारखाने की मशीनों को रुद्रपुर से उखाड़कर क्रेनों से दस ट्रकों में लादकर गजरौला पहुंचा दिया। हतप्रभ यहां के मजदूरों ने फिर भी धैर्य और साहस से काम लिया और गजरौला में न केवल अपनी संग्रामी एकजुटता कायम रखी वरन दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों को भी संघर्षों का साझीदार बना लिया।

ए.एल.पी. (वर्तमान में आनन्द निशिकावा)/ए.एस.पी. के प्रबन्धक शुरू से ही मजदूरों के संगठित होने के विरोधी रहे हैं। उनके द्वारा यहां आन्दोलनों को कुचलने का एक इतिहास रहा है। 1987 के मजदूर आन्दोलन के दमन को यहां के मजदूर अभी भूले नहीं हैं। उसके बाद भी मजदूरों ने अपना संघर्ष जारी रखा। जैसे-जैसे वे संगठित होते गये उनके आन्दोलन की धार भी तेज होती गयी। 1994 में इसने प्रबल विस्फोट का रूप लिया और डेढ़ माह के लम्बे संघर्ष के बाद मजदूरों ने शानदार जीत हासिल की। सबसे बड़ी जीत थी, कारखाने में यूनियन को मान्यता मिलना। लेकिन यह एकता प्रबन्धतंत्र को कभी रास नहीं आयी। तब से यूनियन को तोड़ने और मजदूरों को दिग्भ्रमित करने का उनका प्रयास जारी है।

इधर आनन्द निशिकावा के मालिकानों ने इस कारखाने के मजदूरों के श्रम को निचोड़ कर अर्जित मुनाफे से चण्डीगढ़ में दो नयी इकाइयां स्थापित कर लीं और मजदूरों को कुछ देने के बजाय घाटे का बजट थमा दिया।

आनन्द निशिकावा के मजदूरों के लिए पिछला एक वर्ष काफी संकटपूर्ण रहा है। पिछले वर्ष मार्च-अप्रैल के आन्दोलन के समय से ही प्रबन्धतंत्र मजदूरों पर लगातार हावी होता रहा है। कारखाने के भीतर तरह-तरह से उत्पीड़न की कार्रवाइयां चलती रहीं। यूनियन की खामोशी और प्रतिरोध न करने की स्थिति में प्रबन्धकों का मनोबल लगातार बढ़ता गया। परिणामतः यहां के मजदूरों को अभी तक बोनस भी नहीं मिल पाया है, जबकि मजदूरों से उत्पादकता में काफी वृद्धि करवा ली गयी है। उधर पिछले आन्दोलन के वक्त से ही निलम्बित तीन मजदूर साथियों में से एक यूनियन के महामंत्री बी.सी. शर्मा को ऐन वेतन समझौते के पूर्व मार्च माह में कम्पनी से निष्कासित कर दिया गया और बाकी की तैयारी चल रही है। यही नहीं, प्रबन्धतंत्र ने बी.सी. शर्मा के हस्ताक्षर युक्त त्रिवर्षीय समझौते का मांगपत्र भी लेने से इंकार कर दिया। प्रबन्धकों द्वारा इन सभी मसलों पर मजदूरों को हड़ताल पर चले जाने के लिए उकसाने का क्रम जारी है। इस नाजुक स्थिति में आम मजदूरों का एक हिस्सा ऊहापोह की स्थिति में तो है, लेकिन अपनी एकता पर उसे पूरा भरोसा है।

ऐसी ही विकट परिस्थिति में यूनियन के सामने एकबार फिर एक चुनौती आ पड़ी है। जाहिरा तौर पर, नेतृत्व को सूझ-बूझ भरे कदम उठाने पड़ेंगे और आम मजदूरों को अपनी संग्रामी एकजुटता के दम पर प्रबन्धकों पर भरपूर दबाव बनाना होगा। पूंजीपति महज यही भाषा समझता है। वह मजदूरों की जबर्दस्त जुझारू सांगठनिक ताकत और नेतृत्व की कुशल रणनीति से पराजित होता है। यहीं यह भी ध्यान देने की बात है कि हड़ताल मजदूरों का अन्तिम अस्त्र है। इसलिए कारखाने के भीतर रहकर संघर्ष की रणनीति बनानी होगी। साथ ही कानूनी प्रक्रियाओं का जिस हद तक इस्तेमाल किया जा सकता है, इस्तेमाल किया जाना चाहिए। अतीत की भांति प्रशासन श्रम विभाग और प्रबन्धतंत्र पर दबाव बनाने के लिए क्षेत्र की जनता और अन्य कारखानों-विभागों से भी जनसमर्थन जुटाना जरूरी है।

इस बार दोनों कारखानों की यूनियनों ने दैनिक वेतनभोगी श्रमिकों की समस्याओं को अपने मांगपत्र में जोड़कर और उन्हें अपने आन्दोलन का साझीदार बनाकर एक शानदार काम किया है। यदि दैनिक वेतन भोगी और नियमित श्रमिकों ने मिलकर संघर्ष को आगे बढाया तो निश्चित ही वे एक शानदार जीत हासिल करने में कामयाब होंगे। (15/5/2000)

## नई आर्थिक नीतियों का कहर बच्चों पर

# देश में बाल मजदूरों की सरकारी संख्या सवा दो करोड़ पहुंची

'सेंटर ऑफ कन्सर्न फॉर चाइल्ड लेबर' (सी.सी.सी.एल.) नामक संस्था की रिपोर्ट के अनुसार देश में बाल मजदूरों की सरकारी संख्या सवा दो करोड़ हो चुकी है जिनमें से सोलह लाख बच्चे खतरनाक उद्योगों में काम करते हैं। वैसे यह सरकारी आंकड़े सच्चाई के कितने करीब होते हैं इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि बाल मजदूरी पर राष्ट्रीय सर्वेक्षण के दौरान मुरादाबाद में करीब तीन हजार कर्मचारियों ने महीने भर के सर्वेक्षण के बाद रिपोर्ट दी थी कि जिले में सिर्फ दो हजार बाल मजदूर हैं। जबकि सच्चाई यह है कि इससे ज्यादा बच्चे तो सिर्फ मुरादाबाद से गुजरने वाली सड़कों और बाजारों के ढाबों व चायखानों में ही काम करते हैं।

अनुमान है कि भारत में 5 से 14 वर्ष की उम्र के करीब साढ़े चार करोड़ बाल मजदूर अपना बचपन गला रहे हैं।

कुछ वर्ष पहले हमने 'बिगुल' में 'चाइल्ड लेबर एक्शन नेटवर्क' (सी.एल.ए.एन.) की एक रिपोर्ट का हवाला दिया था जिसके अनुसार नई आर्थिक नीतियों के कारण पूरी दुनिया में अगले एक दशक के भीतर बाल मजदूरों की संख्या में 20 प्रतिशत की वृद्धि होगी और इसके कारण वयस्कों में बेरोजगारी और बढ़ेगी। पिछले तीन-चार वर्षों में भारत में नई आर्थिक नीतियां जितनी तेजी से लागू की गई हैं और इनके विनाशकारी नतीजे जितने बड़े पैमाने पर देशभर में सामने आये हैं, उससे साफ है कि बाल मजदूरों के बढ़ने की दर इससे भी कहीं ज्यादा है। साथ ही सी.सी.सी.एन., सी.एल.ए.एन. और 'बचपन बचाओ' जैसी दर्जनों स्वयंसेवी संस्थाओं की चिल्ल-पों और सरकार के दूरदर्शी प्रचार के बावजूद तथ्य यह है कि बच्चों से पहले से भी ज्यादा अमानवीय हालात में और पहले से भी कम मजदूरी पर काम लिया जा रहा है। 'इंस्पेक्टर राज' से "मुक्ति" के नाम पर रहे-सहे श्रम कानूनों को भी ठेंगा दिखाने की उद्योगपतियों को खुली छूट दे दी गई है।

अभी राजधानी दिल्ली में ओखला की एक फैक्ट्री में 14 बरस का एक लड़का मशीन बंद करके उसकी सफाई कर रहा था। इतने में मालिक आकर उसे डांटने लगा कि मशीन क्यों बंद कर दी। जब तक लड़का उसे समझा पाता तब तक मालिक ने मशीन चला दी जिससे लड़के के हाथ की तीन उंगलियां कट गईं। इसके बाद मालिक ने चुपचाप उसको टांके लगवा कर तीन दिन तक अपने घर पर बंद किये रखा और धमकी देता रहा कि किसी को बताया तो मार डालेंगे। चौथे दिन उसे फिर काम पर लगा दिया गया जहां से भागकर वह लड़का एक मजदूर यूनियन के दफ्तर पहुंचा। वह लोग उसे अस्पताल ले गये जहां उसकी तीनों उंगलियां काटकर अलग करनी पड़ीं। अखबारों के पहले पन्ने पर खबर छपने के बाद भी फैक्ट्री मालिक पर कोई कार्रवाई नहीं हुई।

इस तरह की बर्बर घटनाएं दिल्ली-नोयडा-साहिबाबाद से लेकर फिरोजाबाद के कांच उद्योग और शिवकाशी के माचिस व पटाखा उद्योग तक में रोज की बात हो गई हैं और न तो ज्यादातर घटनाओं की रिपोर्ट हो पाती है और न ही मालिकों को कभी सजा मिलती है। ज्यादा से ज्यादा, मासूम बच्चों के कोमल अंगों या उनकी जान के बदले कुछ हजार रुपये देकर मामले को दबा दिया जाता है।

एक रिपोर्ट के मुताबिक उत्तर प्रदेश के उद्योग एवं श्रम विभाग के अफसरों और फिरोजाबाद के कांच व चूड़ी कारखानेदारों की मिलीभगत से वहां लगभग 80 हजार बाल मजदूर जानलेवा स्थितियों में काम करने को मजबूर हैं। ज्यादातर मजदूर उन भट्ठियों पर काम करते हैं जहां तापमान 1400 से 1800 डिग्री सेंटीग्रेड होता है।

इसके अलावा लगभग ढाई लाख मजदूर चूड़ी जुड़ाई का काम करते हैं जिसमें 35 हजार महिलाएं और 40 हजार बच्चे हैं। जुड़ाई करते वक्त निकलने वाले विषैली गैस मिश्रित धुएं के सम्पर्क में लगातार 8-9 घंटे तक रहने के कारण ज्यादातर बच्चे टीबी और सांस की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। कुछ के फेफड़े बिलकुल बेकार हो जाते हैं। लगभग 40 हजार बच्चे कांच कारखानों में दूसरी तरह के वैसे कामों में लगे हैं जो बच्चों के लिए कानूनन वर्जित हैं। इनसे 10 से 12 घंटे काम कराया जाता है।

कम्प्यूटर, इंटरनेट, संचार क्रांति, सूचना क्रांति, जेनेटिक इंजीनियरिंग और सुख-सुविधा के एक से एक आधुनिक सरंजाम तैयार करने के जिस युग में खुली बाजार व्यवस्था को पूरी दुनिया में स्थापित करके विकास की नई-नई ऊंचाइयां छूने के दावे किये जा रहे हैं, उसी युग में बच्चों को नर्क के अंधेरे रसातल में गुलामों की जिन्दगी बसर करने के लिए कौन बाध्य कर रहा है?

बाल मजदूरी की समस्या कोई नई परिघटना नहीं है जो आज के दौर में पैदा हुई हो। पूंजीवादी वैभव का पूरा अंबार बच्चे और स्त्रियों के खून और पसीने में लिथड़ा हुआ है। उसका एक बड़ा हिस्सा उनके सस्ते श्रम को निचोड़कर तैयार किया गया है।

'सस्ता से सस्ता खरीदना और मंहगा से मंहगा बेचना'—यह पूंजीवाद का मूल मंत्र है। कच्चा माल और मानव-श्रम पूंजीपति सस्ता से सस्ता खरीदता है और अपना माल बाजार में मंहगा से मंहगा बेचता है तथा इस प्रक्रिया में मजदूरों के श्रम का बड़ा से बड़ा हिस्सा निचोड़कर पूंजी का अम्बार खड़ा करता है। कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करके मजदूर के ज्यादा से ज्यादा अतिरिक्त श्रम को निचोड़ने के लिए वह उन्नत से उन्नत मशीनों का इस्तेमाल करता है। इस तरह मुनाफा बढ़ाने के लिए पूंजीपति उन्नत और आधुनिक मशीनें लाता है, जिसपर मजदूरों की एक छोटी तादाद ही बहुत अधिक उत्पादन कर लेती है। मजदूरों की शेष आबादी काम से बाहर कर दी जाती है। 'औद्योगिक बेरोजगारों की इस रिजर्व सेना' की बढ़ती आबादी मजदूरों की मोल-तोल की क्षमता कम करती जाती है और नतीजतन मजदूरी की दर नीचे हो जाती है।

बड़े पैमाने पर बेरोजगार और छंटनीशुदा मेहनतकश अपना श्रम सस्ती से सस्ती दरों पर बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उन्हें जब कोई काम नहीं मिलता तो मजबूर होकर वे अपनी स्त्रियों और बच्चों को भी किसी तरह के काम की तलाश में भेजते हैं जिनका श्रम ठेकेदारों, कारखानेदारों, व्यापारियों और तरह-तरह के घरेलू कामों के लिए अमीर लोगों को मिट्टी के मोल हासिल हो जाता है। बड़े उद्योगों में संगठित मजदूरों को जो सुविधाएं देने और जिन सेवा शर्तों को मानने के लिए पूंजीपतियों को बाध्य होना पड़ता है, उनके बिना ही छोटे-छोटे वर्कशापों में, असंगठित क्षेत्र में मजदूरों, खासकर स्त्रियों और बच्चों के सस्ते श्रम को निचोड़ने का काम हो जाता है।

आज स्थिति यह है कि मजदूरों के संगठित दबाव से बचने के लिए और उनके श्रम को अत्यंत सस्ती दरों पर खरीदने के लिए बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कम्पनियां भी कम्प्यूटर चिप्स और इलेक्ट्रॉनिक सामानों जैसे अत्याधुनिक चीजों के उत्पादन की प्रक्रिया को भी कई हिस्सों में तोड़कर छोटी-छोटी कुटीर उद्योग या घरेलू उद्योगनुमा इकाइयों में बिखरा दे रही हैं जहां ज्यादा काम ठेके पर कराया जाता है और जिनमें स्त्रियां और बच्चे बेहद कम मजदूरी पर दस-दस, बारह-बारह घण्टे काम करते हैं।

बड़ी संख्या में बेरोजगार मजदूरों और अपनी जगह-जमीन से उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल होते जा रहे गरीब व मध्यम किसानों के परिवार जब अपने बच्चों का पेट नहीं पाल पाते, तो बूट पालिश करने, कूड़ा बीनने तथा वर्कशापों और ढाबों-चायखानों-होटलों में काम करने के लिए अपने बच्चों को भेजने के अलावा उनके पास कोई रास्ता नहीं रहता क्योंकि दूसरा रास्ता उनके पास सिर्फ भुखमरी का ही होता है। इस स्थिति का भी लाभ पूंजीपति एक और ढंग से उठाते हैं। वे वयस्क मजदूरों को तो काम नहीं देते, पर स्त्रियों और बच्चों को काम दे देते हैं, क्योंकि उनसे बहुत कम पैसे देकर अधिक काम

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक: डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता: द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय: जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।